‘धूणी तपे तीर’ में अभिव्यक्त राजस्थान का आदिवासी आंदोलन

हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़ में एम.फिल. (हिंदी) की उपाधि हेतु प्रस्तुत

लघु शोध-प्रबंध

शोध निर्देशक
डॉ. अरविन्द सिंह तेजावत

शोधार्थी
निर्मल पंवार
अनुक्रमांक - 10202

हिंदी एवं भारतीय भाषा विभाग
भाषा, भाषाविज्ञान, संस्कृति एवं विरासत संस्थान
हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़-121031
सत्र : 2017-2018

अनुक्रमणिका

भूमिका			i-iv
अध्याय प्रथम	:	हरिराम मीणा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व	1-21
अध्याय द्वितीय	:	धूणी तपे तीर में अभिव्यक्त आदिवासी चेतना	22-47
अध्याय तृतीय	:	गोविन्द गुरु, आदिवासी समुदाय, मानगढ आन्दोलन	48-70
अध्याय चतुर्थ	:	मानगढ आन्दोलन पर लिखित अन्य सहित्य से तुलनात्मक अध्ययन	71-105
उपसंहार			106-109
पारिभाषिक शब्दावली			110-111
संदर्भ ग्रंथ सूची			112-116

भूमिका

हिंदी उपन्यास विधा का आरम्भ सामाजिक यथार्थ की वकालत करने वाली विधा के रूप में मुंशी प्रेमचंद से माना जाता है। जिन्होंने समाज के दबेकुचले वर्गों को अपने विषय क्षेत्र में सम्मिलित किया। जहाँ से विभिन्न वादों और विचारधाराओं से गुजरती हुई वर्तमान युग में जनप्रिय सशक्त विधा के रूप में उभर कर सामने आई। कह सकते हैं कि इस में आयामों का संयोजन है।

आज साहित्य के अपने वास्तविक स्वरूप का ही प्रतिफलन है कि प्रत्येक समाज अपनी-अपनी भूमिका में में अपनी उपस्तिथि दर्ज करवा रहा है। इस उपस्तिथि का ही प्रतिफलन विभिन्न प्रकार के विमर्शों का आगमन फैलाव और संयोजन है। जिनमें दलित विमर्श, स्त्री विमर्श और आदिवासी विमर्श अपनी विशिष्ट पहचान के साथ उपस्थित हो रहे हैं। सभी विमर्श व्यक्ति और समाज की अस्मितायुक्त चेतना और सुरक्षा से जुड़े प्रश्नों से सम्बन्ध जोड़े हुए हैं। साथ ही सामाजिक विद्रूपताओं को बहार निकल नव जागृति का सन्देश भी देते हैं। इन विमर्शों का प्रभाव है कि आज विभिन्न वर्ग प्रत्येक स्तर पर अपने अधिकारों के प्रति सचेत दिखाई देता है। आदिवासी विमर्श के उदय के पीछे कई लामबंध कारण ह। जिन्होंने अपनी प्रत्यक्ष-परोक्ष भूमिका निभाई। विस्थापन,भेदभाव भरा व्यवहार, सामाजिक और आर्थिक शोषण, भ्रांत धारणाएँ आदि प्रमुख है।

प्रत्येक समाज का अपनी जड़े इतिहास में खोजता-पाता है। इसी ऐतिहासिक संदर्भ के सहारे स्वयं को लोक को सम्मुख को प्रकट करता है। जहाँ अपने आरम्भिक स्वरूप की गहन छानबीन कर पूर्वजों के प्रति सम्मान प्रकट करने का प्रयत्न करता है । ऐतिहासिक पृष्ठों में आदिवासी नायकों से जुड़े पृष्ठ ओझल है। इन्हीं ओझल पृष्ठों को सबके सामने लेन का प्रयास ही आदिवसी विमर्श के उदय का महत्वपूर्ण कारण है।

आदिवसी साहित्य की समृद्ध मौखिक परम्परा इसके आदिकाल से वर्तमान कल तक के अस्तित्व का सबूत देती है कि यह साहित्य नवीन नहीं बल्कि अनादिकाल से है। आलोचकों की राय में अदिवासी साहित्य अपनी लोक परम्परा में भाषिक आंचलिकता लिए प्राचीन काल से चला आ रहा है। कमी यह रही की इसे उचित स्थान नहीं दिया गया। अपनी अस्मिता की लड़ाई करती जनता को हाशिए पर धकेल दिया।

'धूणी तपे तीर में अभिव्यक्त आदिवासी आन्दोलन'विषयक अपने लघु शोध प्रबंध को कुल चार अध्यायों में विभक्त किया है।

प्रथम अध्याय में 'हरी राम मीणा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व' में लेखक महोदय के जीवन परिचय और साहित्यक अवदान को रेखांकित करने का प्रयास किया है। उनके बालपन में सगाई–विवाह जैसे सामाजिक रीति-रिवाजों के सहारे आदिवासी समाज की वास्तविक स्थिति को स्पष्ट किया गया है। उन्होंने गरीबी में जीवन की जंग लड़ के भविष्य निर्माण की अकूत जिजीविषा के बदौलत किस प्रकार क्रमश: पदासीन होते हुए कैसे शानदार करियर बनाया। पुलिस जैसी भागमभाग नौकरी करते साहित्य के साथ कैसे तालमेल बिठाया। किस प्रकार लेखन हेतु समय निकालते और घर परिवार को भी संभालते। किस प्रकार विभिन्न स्थानों की यात्राओं को साहित्यक रचना में ढाला।

द्वितीय अध्याय 'धूणी तपे तीर में अभिव्यक्त आदिवासी चेतना' में विवेच्य उपन्यास में समाहित विभिन्न स्तरों पर सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, व अन्य चेतना के संदर्भ मे राष्ट्रवादी चेतना, स्त्री चेतना और आर्थिक चेतना को उजागर करने का प्रयास किया है।

तृतीय अध्याय 'गोविन्द गुरु, आदिवासी समुदाय व मानगढ़ आन्दोलन' में गोविन्द गुरु का जीवन परिचय और उनके कार्यों का विश्लेषण किया गया है ।आदिवासी शब्द को अर्थ और परिभाषित करने का प्रयास किया है। मानगढ़ पहाड़ी पर घटित घटनाओं का विस्तार के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। साथ ही कारणों को भी।

चतुर्थ अध्याय 'मानगढ़ आन्दोलन पर लिखित अन्य साहित्य से तुलनात्मक अध्ययन' में धूणी तपे तीर और मगरी मानगढ़ : गोविन्द गिरी उपन्यासों में विभिन्न स्तरों पर यथा सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक,धार्मिक और भाषाई आधार पर समानता और विषमता को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। साहित्य समाज में दोनों लेखकों ने अपना अमूल्य योगदान दिया ।आदिवासी समाज के सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक आदि मूल्यों को भी समझाने का प्रयास किया है।

अपने संपूर्ण लघु शोध प्रबंध में आदिवसी समाज की विभिन्न स्थितियों को लेकर विभिन्न संदर्भों में विश्लेषित किया है । मानगढ़ पहाड़ी पर विभिन्न घटनाओं एक पीछे के कारणों को भी रेखांकित करने का मेरा प्रयास रहा है । इतिहास में यह घटना ओझल क्यूँ है। इसके पीछे के कारणों को भी दिखने का प्रयास किया गया। अंतिम अध्याय में दोनों रचनाओं में स्त्री की खुली सोच का पर्दा पास हुआ है। प्रेम की अठखेलियाँ खाती जवानी नंदू और कमली तथा बदली और गोंविद गुरु के माध्यम से घोटुल जैसी प्रथाओं को अप्रत्यक्ष रूप से दिखाने का प्रयास किया है। सामूहिकता ही आदिवासी समाज की मूल विशेषता है। लेकिन अंग्रेजी सरकार और रियासती शासक किस प्रकार उसे बिखेरने में लेगे हुए है। जिसे बचाने हेतु गोविन्द गुरु आदिवसी समुदायों को जागृत कर उनसे किस प्रकार लोहा लेते हैं। धूणी तपे तीर में समयोजित विभिन्न आंदोलनों को उजागर करना मेरे लघु शोध प्रबंध का मुख्य उद्देश्य है और साथ ही साथ तुलनात्मक अध्ययन से पूज्य गोविन्द गुरु के पुनीत कर्मों उजागर करना भी रहा है । किसी भी रचना को अच्छी या बुरी बताना मेरा उद्देश्य नहीं रहा है। अंत में शोध उपलब्धियों का लेखाजोखा उपसंहार में अध्ययन के निष्कर्ष के रूप में किया है ।

मैंने अपने शोध प्रबंधका सम्पूर्ण कार्य गुरुवर डॉ. अरविन्द सिंह तेजावत के श्री चरणों के सानिध्य में सम्पन्न किया। उन्होंने पग-पग पर आत्मीय भरा विश्वास देते हुए विषय चयन से लेकर लघु शोध प्रबंध के छपने तक विद्वतापूर्ण निर्देशन दिया और निराशा के पल में मेरा उत्साह वर्धन करते रहे और कार्य के प्रति एक नई उमंग जगाई। मैं उनके प्रति कृतज्ञमय

श्रद्धावनत हूँ और रहूँगा। डॉ.सिद्धार्थ शंकर राय व डॉ. अमित कुमार ने मेरे शोध विषय को संयत करने में पूर्ण सहयोग दिया। मैं उनके प्रति श्रद्धावनत आभारी हूँ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध को मूर्त रूप देने में एक पड़ाव हरीराम मीणा जी का भी आता है। उन्होंने अति व्यस्तता के बावजूद भेंटवार्ता हेतु मुझे स्नेहिल क्षण देकर मेरे दुरुह कार्य को विभिन्न प्रकार की सामग्री उपलब्ध करवाकर असान करने में अवर्णनीय सहयोग दिया ।मैं उनके प्रति श्रद्धावनत हूँ।

मैं आभारी हूँ मेरे माता-पिता, भाई-बहिनों और अन्य परिजनों के प्रति जिन्होंने मुझे उच्च अध्ययन हेतु उचित वातावरण प्रदान किया। समय-समय पर मेरा होसला बढ़ाते रहे और मेरी अनुपस्थिति में समस्त कार्य स्वत: ही सम्पन्न किये।

हरियाणा केन्द्रीय विश्विद्यालय, महेद्रगढ़ के समस्त गुरुजनों राकेश मीणा, डॉ.स्नेहसता, रेणु गिल और समस्त कर्मचारीगण के प्रति भी मैं हृदय से आभारी हूँ। जिन्होंने समय समय पर मेरा पथ आलोकित करते हुए संबल प्रदान किया । मेरे बंधु-मित्र और सहयोगी डॉ.मुख्तियार अली, डॉ.तालीम अख्तर, डॉ. रविकांत सिंह, बजरंगलाल नवल का भी आभार व्यक्त करता हूँ। जिन्होंने मेरा जगह-जगह मार्गदर्शन किया।

हिंदी एवं अन्य सभी विभागों के वरिष्ठ शोधर्थियों, सहपाठियों और मित्रों ,विभिन्न संस्थाओं का आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने मुझे प्रत्यक्ष-परोक्ष सयोग प्रदान किया।

दिनाँक : **निर्मल पंवार**

हिंदी विभाग

हरियाणा केंद्रीय विश्विद्यालय, महेंद्रगढ़

अध्याय : प्रथम

हरिराम मीणा व्यक्तित्व एवं कृतित्व

राष्ट्रीय स्तर पर राजधानी की मिट्टी और संस्कृति से गहराई से जुड़े तथा प्रतिष्ठित उपन्यासकार व आदिवासी चिंतक लेखक हरीराम मीणा आदिवासी समाजपरक लेखकीय परम्परा के रचनाकार है। यद्यपि इनका कथा लेखन परिवेश राजस्थान से संबंध रखता है। लेकिन चित्रण इतना विस्तार लिए हुए है कि वह अंचल का चित्रण होते हुए भी आंचलिकता की बजाए पूरे भारतीय आदिवासी परिवेश से साक्षात्कार करा देता है। उनका जीवन राजस्थानी आदिवासी समाज और संस्कृति से रंगा जीवन है जिसमें आदिवासी समाज की विवशता, दुःख और आर्थिक परिस्थितियों में जकड़ा लबादा है। जिसे परत दर परत खोलने पर अजीब सा जीवन दिखता है।

आदिवासी जीवन, समाज और संस्कृति के विषय पर लेखनी चलाने वाले हरिराम मीणा का जन्म मई, 1952 ई. को राजस्थान के सवाई माधोपुर जिले के बायनवास नामक ग्राम में हुआ था। जन्म तिथि को लेकर अनिश्चितता हैं जिसे वे अपनी एककहानी से जोड़कर बताते हैं। सवत् दो हजार तेरह को जब उनकी नानी की मृत्यु के बारहवें दिन के दो-चार दिन बाद और उसदिन बहुत जोरदार आँधी-वर्षा हुई। उस समय के बारे में पूछने पर बताया शुक्रतारा के आसमान पर चढ़ जाने के बाद सर्दी का मौसम था और दीपावली के बाद का समय था। जिसमें औरते चक्की पीसने जल्दी उठ जाया करती हैं।

"संवत दो हजार तेरह में जब भौरी नाना 'नानी' परी बीका बारह बामणन (बारहवाँ) के तीन-चार दिन बाद थारो जन्म हुयो हो, और जावले के बा रात सू आँधी-मेह आयो हो ..... ए भाया, चाखीन उरयाँ को टेम हो, अर तारो (मोर यानी कि शुक्र तारा) याथान

तक धंड आयो हो, अब घड़ी का हिसाब सू अंदाज लगा ले ..... दीपावली निकलगी और थोड़ी बहुत ठंड पड़वा लगी दी।''[1]

इस प्रकार बताने के बाद जब पण्डित जी पंचाग की गणन की तो तिथि 15 नवम्बर 1954 को निश्चित हुई।

हरिराम मीणा के परिवार में पिताजी ने तीसरी कक्षा तक अध्ययन किया था।उनको आदिवासी समाज में रहते हुए कक्षा तीन पढ़ाई कीए हुए पिताजी का सानिध्य मिला। माताजी अनपढ़ थी। घर परिवार चलाने का एकमात्र सहारा कृषि कर्म ही था।

हरिराम मीणा जी का परिवार मध्यम आकार का परिवार था। आजीविका का साधन जमीन ही थी। बचपन बड़ा कठिनता में बीता। पाँच भाई-बहन थे। उनकी परिवरिश बड़ी कठिनता से हो रही थी। पढ़ाई का ज्यादा माहौल नहीं था। परिवार में सबसे छोटे थे। पिताजी ने अपने पुत्र को आगे की शिक्षा दिलानी चाही। लेकिन धनाभाव था। हरिराम पढ़ना चाहते थे। इसलिए पिताजी ने किसी से कर्ज लिया ताकि पुत्र की पढ़ाई हो सके।

प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा अपने गाँव के प्राप्त की। उच्चमाध्यमिक स्तर की शिक्षा निकटवर्ती कस्बे गंगापुरसिटीसेअर्जितकी। स्नातक स्तर की शिक्षा करौली के राजकीय महाविद्यालय से आरंभ की जहाँ प्रथम दो वर्ष तक अध्ययन करते रहे। अब नजरिया में कुछ बदलाव आया और राजधानी जयपुर चले गए। जहाँ से स्नातक की हिन्दी साहित्य, इतिहास, नागरिक शास्त्र के साथ 1973 ई में परीक्षा उत्तीण की।शिक्षा के प्रति रूचि थी।इसलिए आगे शिक्षार्जन हेतु मन बनाया। स्नातकोत्तर के लिए वहीं राजनीतिक विज्ञान विषय में की परीक्षा देकर 1975 में उपाधि प्राप्त की।

मीणा जी का विवाह 1968 ई में अक्षया तृतीया के दिन हुआ। सगाई के तो कब और कैसे हुई आजतक वास्तविक रूप से जानकारी में नहीं। लेकिन कांचे खेल से बुलाकर किसी

अजनबी ने मुझे देखा। पर मैं झिझका परिवार वालो द्वारा समझाने के बाद मैं उनके निकट आया। उन्होंने सिर पर हाथ फेरकर आर्शिवाद दिया और एक रूपये का नोट दिया। उन्होंने इस नोट को अपनी जीजी को दे दिया। अब घर में कुछ देखभाल ठीक होने लगी। कानों में चाँदी के कुंडल डाले गए। अच्छे कपड़े भी पहनने को मिले। विवाह के दिन भाभियों ने अलग-अलग रंगों से सजाया। पेंट कमीज के साथ गंगापुर से लाल के रंग जूते लाए गए। न घोड़ी न बैंड़-बाजा एकदम साधारण तरीके से शादी हुई। परिवार नाते-रिश्तेदारों ने भोजन किया। यह सामूहिक भोज था। यही सामूहिकता आदिवासी समाज की पहचान है जिस पर वह चलता आया है। सरकारी नौकरी में रहते हुए यदि किसी घरवाली के बारे में से पूछना होता तो बोलते थे कि 'घरवाड़ा खां है' तो परिवार के सदस्यों की जानकारी दे दी जाती लेकिन पत्नी के बारे में कोई नही बताता।

"भायो गाय चरावा गियो, जीजी पागी भरबा गयी, काको खेतन में है, काकी बाजार गई, भैण-हाबा कूँ गयी, थारो भाई सिल्याण में ताश खेल रहयो होयेगो वगैरा.....।"[2]

बचपन में गरीबी को नजदीक से देखा था। परिवार में आय को कोई दूसरा स्त्रोत नहीं था। पढ़ाई के साथ सरकारी नौकरी के प्रयास करना शुरू कर दिए। अनुसूचित जाति जनजाति योजना अन्तर्गत समाज कल्याण विभाग में लगभग 45 दिन तक चतुर्थ श्रेणी का कार्य किया। फिर 'सेंटरल बैंक ऑफ इण्डिया' में तीन माह तक अस्थाई लिपिकीय सेवाएं दी। फिर 'पंजाब नेशनल बैंक' मैं स्थायी नौकरी मिली। इसके बाद 1976 ई में भारतीय रिजर्व बैंक की परीक्षा उत्तीर्ण की और स्थायी नौकरी मिली। वही पर संगीत से मेलजोल हुई। 1975-78 तक मनमोहन भट्ट साहब से गिटार की शिक्षा ग्रहण की। फिर राजस्थान पुलिस सेवा में चयन हो गया और भरतपुर में नौकरी मिली। मेहनत और भाग्य ने गजब तालमेल बैठाया और पदौन्नति होती रही 1997 से 2012 तक भारतीय पुलिस सेवा में नागौर जिले के पुलिस अधीक्षक पद

कार्य आरंभ किया। विभिन्न स्थलों पर सेवा देते हुए राजस्थान सरकार के सम्पूर्ण पुलिस विभाग को संभालते हुए सेवा निवृत हुए।

2003 ई को सूरीनाम में आयोजित सातवें विश्व हिंदी सम्मेलन में राजस्थान के आठ सदस्यों के साथ 'विश्व प्रसिद्ध व प्रतिष्ठित' जयपुर लिटरेरी फेस्टीवल में निरन्तर सक्रिय रहे और सम्मान मिलता रहा। भारत भर में भ्रमण किया विशेषकर आदिवासी इलाकों का। विश्व में नेपाल हालैण्ड व सूरीनाम का भी भ्रमण किया।

अखिल भारतीय आदिवासी साहित्यिक मंच के अध्यक्ष रहे, कुछ गैर सरकारी संगठनों से जुड़े रहे, राजस्थानी साहित्य अकादमी की कार्यकारिणी में शामिल थियेटर्स एवं कम्यूनिकेशन के सदस्य, हैदराबाद विश्वविद्यालय में विजिटिंग प्राफेसर रहे (2003), राजीव गाँधी जनजातीय विश्व विद्यालय के प्रबंधन बोर्ड में राज्यपाल द्वारा नियुक्त सदस्य आदि कई पदों पर कार्य किया।

अपने लेखन के साथ पत्रकारिता में भी लेखनी चलाई आदिवासी साहित्यिक पत्रिका 'अरावली उदघोष' का सद सम्पादन में हाथ बढ़ाया। रमणिका फाउंडेशन द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'युद्धरत आम आदमी 'व दस्तक व अकार पत्रिकाओं के आदिवासी विशेषांकों के सम्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की ओर 'रूबरू' और आईना जैसे सीरियलों के लिए और ब्रिटिश कालीन भारत के आदिवासी संघर्षों की दास्तानों पर विशेष शोध कार्य किया।"धूणीतपेतीर पर बनी डॉक्यूमेंट्री जंगल में जलियावाला को इंटरनेशनल फिल्म फेस्टीवल 2011 में सर्वोच्च अवार्ड दिया गया।"[3]

इनके उपन्यास 'धूणी तपे तीर' का अंग्रेजी व 'जंगल-जंगल जलियावाला' यात्रावृतांत का पंजाबी में अनुवाद हुआ और अंतराष्ट्रीय महात्मा गाँधी हिन्दी विश्वविद्यालय के 2009 कार्यक्रम 'हिन्दी समय' में मीणा जी को स्थान मिला।

दलित और आदिवासी समुदाय में जनजागृति लाने वाले हरिराम मीणा जी को सन् 2000 को डॉ. अम्बेडकर अवार्ड से सम्माणित किया गया। महापंडित राहुल सांकृत्यापन पुरस्कार सन् 2007 को जो केन्द्रीय हिन्दी संस्थान का अत्यन्त प्रतिष्ठित पुरस्कार, 16/02/2009 को प्रदान किया गया। देश के प्ररतिष्ठित विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में इनकी पुस्तकें/पुस्तकीय अंश सम्मिलित किय गये हैं। जैसे जयनारायण व्यास विश्व विद्यालय जोधपुर, आई.जी.एन.टी. केन्द्रीय विश्वविद्यालय, राजस्थान विश्वविद्यालय दिल्ली विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में मीणा जी की पुस्तक सम्मिलित है।

हरिराम मीणा का जन्म अभावों में बीता था। जिंदगी में हर एक कमी के दुःख को झेला-समझा। गरीबी से छूटकारा पाने और दुःखो से बहार निकलने का एकमात्र रास्ता कर्मशील जीवन ही था। इसलिए भाग्य के बजाए कर्म में ज्यादा विश्वास किया। प्रत्येक कार्य को कर्तनिष्ठा के साथ पूर्ण किया। उसी का परिणाम था अभावों से भरे जीवन को जीते हुए पुलिस महानिदेशक पद तक पहुँचे। पुलिस की नौकरी वैसे भी बड़ी कठिन व सजक रहने की होती है। घर-परिवार से दूर दिन-रात की बिना परवाह किए तबादलों भरे जीवन से समझौता करना पड़ता है। पुलिस की नौकरी और उसके साथ साहित्यिक अभिरूचि बड़ा जौखिम भरा काम है। साहित्य तो पूरा ध्यान माँगता है। अतः कर्तत्व और निष्ठा को भूलकर साहित्य लिखा ही नही जा सकता। उसमें झूठ-झपट और ना नुकुर का तो प्रश्न ही उठता है।

रघुवीर सहाय की पंक्तियों में कह सकते हैं-

हम तो 'सारा का सारा' लेगे जीवन

'कम से कम' वाली बात न हम कहिए।

आदिवासी समुदाय के बारे में एक धारणा बनी हुई है कि यह आदिय प्रकृतियों में जीते हैं लेकिन आज समय बदल गया। आदिवासी समुदाय विज्ञान और तकनीकी के साथ

मेलजोल बढ़ा रहे है। हाँ इतना अवश्य है कि सम्पूर्ण आदिवासी समुदाय अभी इसमें सम्मिलित नहीं है। इसके लिए हम सब को आगे आना होगा।

उन्हें विकास की मुख्य धारा से जोड़ना होगा। इसके लिए उनके पारम्परिक संस्कारों पर बिना कुठाराघात किए मातृभाषा में शिक्षित करना होगा तभी वे परिवर्तन के साझेदार होगे अन्यथा नहीं।

हिन्दी में अपनी लेखन यात्रा के अन्तर्गत आदिवासी सामाजिक जीवन के लगभग प्रत्येक पहलू पर अपनी लेखनी चलाई। उसमें छीपी गंध का पहचाना, वहाँ के लिजलिजेपन को बखूबी लफ्जों में बांधा। इस दृष्टि से आदिवासी समाज का शायद ही कोई पक्ष उनकी पैनी दृष्टि से ओझल रहा हो। निम्न वर्ग से लेकर उच्च वर्ग तक भोली-भाली जनता से लेकर राजनेता तक शुद्र-आदिवासी से लेकर ब्राहमण तक किसान से लेकर सेठ साहूकार तक चपरासी से लेकर अफसर तक पुरानी पीढ़ी से लेकर आधुनिक पीढ़ी तक के प्रत्येक पथ पर रचनाकार ने अपनी वाणी मुखरित की है।

आदिवासी लेखन व विमर्श में अपना महत्वपूर्ण योगदान देने वाले हरिराम मीणा ने पद्य व गद्य दोनों विधाओं में लिखा। आपके समस्त साहित्य को अध्ययन सुविधा हेतु निलरूप में विभाजित किया गया है-

अ. पद्य साहित्य

ब. गद्य साहित्य

1. कथा साहित्य
2. कथेत्तर साहित्य

'हाँ चाँदमेरा है' नामक कविता संग्रह 1999 ई में प्रकाशित हुआ। इस काव्य संग्रह में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपी कविताओं को संकलित किया गया। इन कविताओं में

रचनाकार को सृजनात्मक क्षमता और रचना धर्मी मस्तिष्क और खुले भावुक हृदय का परिचय दिया। इस कव्य संग्रह ने रचनाकार को साहित्यिक संसार में कवि के रूप में मुकम्मल पहचान दिलाई। इस पुस्तक की सारगर्थिक रचनात्मकता का सुखद परिणाम यह रहा कि राजस्थान साहित्य अकादमी के सर्वोच्च पुरस्कार 'मीरा पुरस्कार' हेतु इसे चुना गया। यह एक पुस्तक के साथ आदिवासी कवि की मनादेशा व चिंतन का भी सम्मान था जिसे सभी ने स्वीकार किया।

साहित्य और इतिहास का छात्र होने के नाते कवि मन तीव्रगति आगे बढ़ता है। भारतीय ऐतिहासिक प्ररिप्रेक्ष्य को समझने की कोशिश की पौराणिक आख्यानों को समझा। मियकीय गाधाओं समझा। इसी क्रम में भारतीय संस्कृत साहित्व के महाकवि कालिदास के वैचारिक धरातल को समझने का प्रयत्न किया। उनकी ख्याति प्राप्त रचना 'मेघदूत' को पढ़ा और समझा। इसकी मिथकीय अवधारणा को आधुनिक संदर्भ में पुनर्व्याखित किया। मीणा जी की दूसरी पद्य रचना 'सुबह के इंतजार में' नाम से है। जिसे 'क्षर शिल्पी' प्रकाशन वालों ने छापा है। यह पुस्तक दो भागों में विभक्त है।

'रोया नहीं था यक्ष' के नाम से छपवाया। उसी क्रम में वर्ष 2000 से 2006 के बीच लिखी और छपी। कविताओं का इसरा संकलन 'सुबह के इंतजार में' शीर्षक से वर्ष 2006 में प्रकाशित हुआ है।

गोविन्द गुरू अपने नैतिक बल व जिज्ञासु प्रवृति के कारण आदिवासी समाज में अपना जागरती आन्दोलन का शुभारम्भ करते हैं। इन्होंने अपने बचपन के मित्र कुरिया और आदिवासी नायक पूंजा के साथ सामजस्य बैठा जनजागृति आन्दोलन को क्रमिक गति दी। इन्हीं लोगों के सहयोग संपसभा का गठन किया। जिसके माध्यम से लगभग तीन दशकों तक आदिवासियों जागृतिमय चेतना भरते रहे। आदिवासी समाज मेंव्याप्त कुरूतियों और बुराइयों

के उन्मूलन हेतु जागृतिक अभियान आरंभ किए। विशेषकर मदिरा सेवन से पाप्त दुरूपरिणामों से बचाने और शारीरिक स्वच्छता प्राप्त करने के लिए व्यापक स्तर पर सफल अभियान चलाया। जिसका परिणाम यह हुआ कि शराब की खपत में व्यापक स्तर पर गिरावट आई। बाँसवाड, रियामत में इसका सीधा असर 18,740 गैलन से घटकर 5,154 गैलन के रूप में दिखाइ्र देता है। साथ ही प्रतिदिन स्नान करना व हवन आदि में हिस्सा लेना आरंभ हुआ। आदिवासियों द्वारा उन्होंने आदिवासी अंचलों की यात्रा करते हुए अन्याय अत्याचार के विरूद्ध मुहिम चलाने हेतु निष्ठावान समर्पित कार्यकर्ताओं का संगठित स्वरूप खड़ा किया। आस्था और अधिकारों के प्रति चेत्य समूह ने 1913 ई को आरपार की लड़ाई छेड़ दी। रणनीतिक मानगढ़ पहाड़ी पर तकरीबन ढाई हजार आदिवासियों का जनसैलाब उमड़ा। ब्रिटानी हुकूमत ने एकत्र आदिवासी समाज को कुचलने की योजना बनाई। तयशुदा रणनीति में रियायती सेना के साथ अपनी सशस्त्र सात कम्पनियाँ वहाँ भेजी। शांत आयोजन को बेरहमी से कुचला गया। लगभग 1500 आदिवासियों की हत्या करते हुए 900 आदिवासियों सहित गोविन्द गुरू गिरफ्तार करलिए गये।

यह ऐतिहासिक सत्य है कि गोविन्द गुरू ने आदिवासी समाज के लिए अपने जीवन काल में बहुत कुछ अच्छा करना चाहा। इस समाज की स्थिति और मनादेशा को समझा। जिससे उनके भीतरअन्तर्दृंद आरम्भ हुआ। अन्तर्दृंद के कारण उनमें प्रतिकार और प्रतिरोध की भावना प्रस्फूटित हुई। क्योंकि उन्होंने समझ लिया कि किसी स्थिति को बदलने के लिए प्रतिरोध आवश्यक है- उन्हीं के शब्दों में

"नहीं काका, ऐसा मत सोच जो भी हमारे पास है उसमें गुजारा करना तो अपनी जगह ठीक है, लेकिन ये राज के आदमी हम पर अनेक प्रकार के अत्याचार करते हैं..... इनका विरोध हमें करना चाहिए ना? अगर ऐसी बातें न हो तो क्या हमारा जीवन सुधर जाएगा।"[4]

गोविन्द गुरू प्रतिरोध के साथ सरल हृदयी इंसान है जिनकी मूल प्रवृति धार्मिक है। दया और प्रेम, सहयोग और कर्तव्यनिष्ठा, नित्यकर्म गतिशील जीवन में विश्वास, संगठन में विश्वास, और आस्थामय जीवन आदि के द्वारा इनके व्यक्तित्व की विशेषता का उभारा गया है।

इतिहास के पनों में कुछ छूपा दिया जाता है। इसी छूपे हुए इतिहास को हरिराम मीणा ने सबके सामने प्रकट किया। सत्य को उजाकर किया कि शोषण करने वाला कायर होता है फिर भी सूझबूझ के शोषण करता है और शोषित द्वारा समझने व प्रतिरोध करने पर हिंसात्मक तरीकों को अपनाकर उसे समूल नष्ट करने का प्रयत्न करता है। जिसका स्पष्ट उल्लेख मानगढ़ हत्याकांड में हुआ है। लेकिन इसकी लौरूपी मूल चेतना को नष्ट करने के बाद भीवह राख में दबे अंगारों की भाँति चेतन रहती है। जिसमें सिमटे होते है उनके आचरणिक सद्गुणों से पुष्ट सभ्यता और संस्कृति उनका अदम्य साहस और शौर्य और मानव अस्तित्व और विकास को जिंदा रखने वाली प्रकृति के प्रति अपनत्व भाव। हरिराम मीणा का यह कथन अति सटीक है-

"मानगढ़ पर्वत पर यहाँ-वहाँ पड़े हताहतों के दरों के बीच दीपालय में रखे हुए दीपक की बाती के बुझ जाने के बावजूद वह गर्म थी और रातभर जली गोविन्द गुरू की धूणी की आग बुझी हुई थी। लेकिन राख के भीतर चिनगारियां दबी हुई थी।"[5]

हरिराय मीणा ने अपने साहित्यिक जीवन में दो कहानियाँ ही लिखी है। दोनों कहानियाँ आदिवासी-दलित चेतना से संबंध रखती है। इनकी पहली कहानी 'सांवड्या' के नाम से है। और दूसरी 'बोत्या' के नाम से है।

'सांवड़या' कहानी का मुख्य पात्र सांवड्या ही है। जिसके इर्दगिर्द सारा घटनाचक्र घूमता है। इस कहानी में चरित्र चित्रण को प्रधानता मिली है। साथ ही साथ आदिवासी समाज की आस्था और त्योंहार को चित्रित किया गया है।'सांवड्या' एक लघू जोत का मालिक है।

कहानी की कथावस्तु होली के त्योंहार मनाने की गतिविधियों से गति पाती है जिसमें मुख्य गतिविधि कुश्ती का दंगल है। जिसमें दिल्ली के पहलवान शामिल होते हैं। लक्ष्मीनारायण पटेल दंगल हेतु सांवड्या के नाम की घोषणा कर देते हैं। दंगल में दोनों पक्ष बराबर रहते हैं। इनाम भी बराबर प्राप्त होता है लेकिन किसान होने के नाते सांवड्या अपने खेत की प्रति चिंतित है और कहाँ जाकर काम में जुट जाता है। जीत को खुशी की बजाए खेत के कार्य पर ध्यान है। इनके चरित्र और चित्रित करते लिखते है-

"महेनत की भट्टी में तपा हुआ बदन लुहार के हथौड़े से तराशा हुआ सा एक अंग, अकूत ताकत भरी बलखाती माँसपेशियाँ किसी कठिन राह के लिए तैयार उसके पांव और आंटण पड़ी हथेलियाँ सांवड्या ने ललाट पर फेरी, दृष्टि को अंतिम बार इमली पर लटकी जूती पर टिकाया।"[6]

कथाकार कहानी की विषयवस्तु को स्पष्ट करने के लिए अन्य पात्रों को जोडता है। लक्ष्मी नारायण पटेल चतुर सिंह पहलवान और गाँव के वयोवृद्ध गणमान्य नागरिकगण। लेखक कहानी का आरंभ होली के त्योहार से करता है बच्चे सुबह से ही धमा चैकड़ी मचाते खेल का आनंद लेना आरंभ करते हैं। रंगों से रंगने के लिए भाभियों के पिछे पड़ जाते हैं। शांत और शर्मीले स्वभाव वालों के थोड़ा ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है कि इस दिन उनकी नहीं चलती। यह रंगों को त्योहार शर्मीलेपन और संकीर्ण विचारों को खात्मा कर सभी में प्रेमभाव भरता है। छोटे-बड़े का भेद समाप्त-सा हो जाता है।

विरासती सम्पदा से रहित जीवन जीने वालो सांवड्या को अपने कर्म पर भरोसा है। असली सौन्दर्य मेहनत पर टिका है।"उसके सांवले बदन में अनूठा सौन्दर्य झलकता था"[7]

यह कहानी आदिवासी ग्रामीण परिवेश और संस्कृति की जीता जागता चित्र प्रस्तुत करती है देशकाल व वातावरण का चित्रण स्पष्ट हुआ है। लेखक ने आंचलिक शब्दावली के

सहारे आदिवासी ग्रामीण परिवेश को उद्घाटित किया है जिसमें, जीवन की जटिलत परिस्थितियाँ से जुझते हुए आदिवासी मीणा सम्मान को उभारा है। 'गजब काआदमी था बोत्या' हरिराम मीणा की दूसरी कहानी है।

'बोत्या' अनाथ आदिवासी युवक है। जिसकी अपनी जिजीविषा है। कहानी की मूल पृष्ठभूमि इसी अनाथ जीवन की जिजीविषा के इर्द गिर्द घूमती है। कहानी का मूल पात्र सीधेपन के कारण विभिन्न प्रकार के शोषणों का शिकार होता है जैसे मनोदैहिक शोषण, साहूकारी महाजनी व्यवस्था द्वारा शोषण। यहां बोत्या के सहारे आदिवासी समाज की दुःख भरी दास्तान कही गया है। अपने ही विचारों पर चलने वाला बोत्या नई सोच को तरजीह दिए बीना ही सफल जीवन जीता है। दही में गिरी छिपकली निकालकर दही पी जाना वाली घटना आदिवासी समाज के गरीबी भरे जीवन का पर्दापाश करती है। दूसरी तरफ पत्नी का प्रसव खेत में बिना किसी की सहायता से करा देना महज सामान्य घटना नही बल्कि आदिवासी समाज की अशिक्षा, अन्य लोगों द्वारा किये अपमान और औरतों के प्रति देखे गये अन्याय और शोषण इसकी जड़ में है। कथोपकथन सीमित रूप में है संवाद कम है पर जो है यह बहुत सटीक है-

"एक सांस में बोत्या ने दही राबड़ी से भरी थाली को खाली कर दिया और बचे हुए को अंगूलियों में पोंछकर खाते हुए बोला-दही में भरी छापकी सू (जहर) खो (फैले) हाँ जे गर्म दूध में पड़ती तो बात न्यारी होती।"[8]

ऋतुचक्र से जुझते राजस्थानी प्रदेश में वर्षों से जड़ जमाए जल संकट का भी वर्णन किया है। जिस के लिए सरकार द्वारा कोई ठोस कदम नहीं उठाए गए।

आँचलिक व तत्सम शब्दावली का प्रयोग करते हुए लेखक ने अपनी कहानी में कहावतों का यथा स्थान प्रयोग किया।

दीपावली के दिन पटकों की आग से उसकी मौत हो जाती। स्वयं अनाथ था अब अपने परिवार को भी अनाथ कर चल बसा था बोत्या। आदिवासी समाज में गरीबी अपना पूरा दमखम दिखाती है। तो दुर्भाग्य की अपना पूरा साथ निभाता। यही सच्चाई है आदिवासी समाज की।

हरिराम मीणा ने दो लघु कथाओं का भी सृजन किया है। जिनकी नाम 'सबूत' और 'जवाब' है। सबूत लघुकथा में आदिवासी विस्थापन का दर्द झलका है। दर्द के साथ एक सवाल भी खड़ा करता है। कि न्याय भी इतना पंगु क्यों हो जाता है। यह कहानी तथाकथिक समृद्ध कहलाने वाले और न्यायपालिका पर सवाल खड़े करती है कि वास्तव में मालिकाना हककिसका? जिसके पास स्याही से लिखे चंद कागजी टुकडे है उसका? अथवा जो पुरखों से वृक्षों पत्थरों को जानता पहचानता आया है उसका?

क्या लिखित में दस्तावेज न होने की वजह से आदिवासियों को भूमि से बेदखल किया जाना उचित है? यह कहानी भूमि बेदखली और भावनात्मक रूप से प्रताड़ित कर उनके शोषण को प्रर्दापाश करती जो आरंभ लेकर आजतक जारी है।

दूसरी लघुकथा 'जवाब' अंग्रेजी हुकूमत के जंगल और आदिवासी विरोधी नितियों को संदर्भ में लिखी गयी है। जिसमें अंग्रेज नीतियाँ बनाकर आदिवासीयों को भूमि से बेदखल करना चाहते है। जिसका आदिवासी जन पुरजारे विरोध करते है। एक ब्रिटानी अधिकारी द्वारा सवाल पूछने पर गजब का जवाब मिलता है।

"अगर तु प्यासा है तो पानी पिलाऊँगा, यदि भूखा है तो रोटी का इंतजाम करूंगा, और थका हुआ है तो मेरी यह चारपाई आराम करने के लिए दूंगा, लेकिन पहले यह बता कि मेरी ज़मीन पर खड़ा होकर मुझसे नाम पूछने वाला तु कौन है।"[9]

'आदिवासी लोक की यात्राएँ' पुस्तक में लेखक की खोजी यात्राएँ है। आदिवासी 'पुण्यभूमि' के झारखंड महाराष्ट्र, छतीसगढ़ और दक्षिणी भारत के तेलंगाना, आंधप्रदेश व मध्यप्रदेश, गुजरात व राजस्थान के आदिवासी स्थलों के भ्रमणमय खोजों का लेखाजोखा है। नीलगिरी पर्वत-घाटियाँ जो दक्षिण भारत की शान है। अंडमानी टापू के निवासी जो सदियों से उपेक्षित-से रहे।

अंडमान और निकोबार के बारे में काफी रहस्यों का उद्घाटन दिया गया। वहाँ के जीवन और दर्शन को शब्दों में बांधा है। वहाँ निवास करने वाले आदिवासी समुदायों के बारे में रोचक तथ्य लोगों के समक्ष पेश किऐ हैं।

"नांगिला तो लुप्त ही गये, जारवाओ की संख्या 320, ग्रेट अंडमानी 54, औग 94 एवं सेटेनली 112 बताये जाते है।..... सेंटेनली लोगों के साथ बाहरी लोगों का सम्पर्क अभी भी नहीं के बराबर हैं।"[10]

बेगा आदिवासी समुदाय के विभिन्न नामों से अभिहित हुए बताते है कि इनकी लोक संस्कृति बढ़ी विचित्र है। जिसमें 'करमा' सबसे रंगीला वे लोकप्रिय नृत्य है। यहाँ 'वेरियर एस्विन' और एसी.सी. दुबे के बारे में बताया कि उन्होंने बैगा आदिवासियों के सामाजिक गीत व नृत्य का संकलन किया।

बनजारा समाज रायसीन पहाड़ी के मालिक हुआ करते थे आज भी इसी संदर्भ में संघर्ष करते है लेकिन मीडिया व इतिहास में इसे खुली जगह नहीं मिली। यहाँ लेखक अंग्रेजी सरकार के विस्थापन के रवैय को स्पष्ट करते हैं। यहाँ पर 'धूणीतपे तीर' की घटना का भी उल्लेख करते हैं।

मध्यप्रदेश के आदिवासी समुदाय के 'टट्या मामा' का भी उल्लेख किया हुआ अंग्रेजी सरकार व भीला समुदाय का संघर्ष का जिक्र यहाँ हुआ है। पौराणिक कथा कोजोड़कर

चेंचू आदिवासी समुदाय का ब्योरा प्रस्तुत किया है। आखेट व पारम्परिक जीवन शैली में जीते ये लोग द्रविड़ भाषा से संबंध रखते है।

गरासिया समुदाय राजस्थान के दक्षिणी व दक्षिणी पूर्वी हिस्सों में बहु संख्या में मिल जाता है। इनकी दशा अभी भी बड़ी शोचनीय है। गरीबी भरा जीवन जीने के उपरान्त भी कुदरत के कारनामें सामने आने है? वह कारनामें गरासिया लड़कियाँ का सौन्दर्य। इसी कारण कई होटलों पर स्वागतकर्ता के रूप में खड़ी मिल जाती है।

"गरासियाँ लड़कियाँ गोरवर्णा व सुन्दर होती है इसलिए कई उच्च श्रेणी के हरिटेज रिसोर्टस में मैंने उन्हें तिलक का सामान व फूल मालाएँ लिए खड़ा देखा। पूछने पर बताया कि पर्यटकों, खासकर विदेशी अतिथियों को आकर्षित करने के लिए इन्हें स्वागत के लिए रखा जाता हैं।"[64]

आदिवासी समुदाय की घोटुल संस्कृति पर विचार-विमर्श किया है। साथ ही गोंडी भाषा के प्रति प्रेम और शोध रूचि का उल्लेख किया है।गोंड़ विशेषज्ञ क्रिस्टोफ वार्न हेमेंडोर्फ का जिक्र किया।

'मीणा' सामाज के गण चिह्न व उसके प्राचीन ऐतिहासिक तथ्यों का उल्लेख किया है। मीणा शब्द मूल संस्कृत के 'मीन' से निकला है जिसमें राजस्थानी भाषा के प्रभाव से न का उच्चारण 'ण'में होता है। मीन का एक अर्थ 'मछली' भी होता है इसलिए इनका गण चिह्न भी यही है।

आदिवासी समुदाय के प्रखर चिंतक शिक्षाविद् लेखक व संस्कृति कर्मी बिरसामुंडा के विचारों का उल्लेख किया। जिन्होंने आदिवासी समाज के लिए संघर्ष किया।

सहरिया समुदाय विशेषकर राजस्थान के शाहबाद कस्बे में निवास करते हैं। इनका सबसे बड़ा मेला केलवाड़ा के सीताबड़ी स्थल पर भरता है। मान्यतानुसार यहाँ सीता ने वनवास का समय यहीं बिताया था।

यह समुदाय भील समुदाय से भी अपना संबंध जोड़ता है। कहीं-कहीं पर 'रामायण' की पात्र 'शबरी' से भी संबंध जोड़ते है।

'जंगल-जंगल जलियावाला' यात्रा वृतांत तीनों अध्यायों में विभक्त है। इसमें पहला अध्याय 'मानगढ' नाम से है। जिसमें लेखक की यात्रा जयपुर से आरंभ होकर अजमेर पाली, सिरोही होती हुई उदयपुर पार बाँसवाड़ा के स्थल 'मानगढ़' पर पूर्ण होती है। यहाँ दक्षिणी राजस्थान के राजनैतिक, ऐतिहासिक व लोकधर्मी तथ्यों उल्लेख हुआ है। प्रकृति के विहंगम दृश्यों का ब्यौरा प्रस्तुत करते-करते मानगढ़ धाम के स्वतन्त्रता सेनानी के पौत्र नाथू लाल जी मिले। जिन्होंनेमानगढ़ हत्याकांड के संबंध में जानकारियाँ दी और वह साफा दिखाया जिस पर गोलियों के निशान बने हुए थे। लेकिन वे बच गए। लेखक के भावभरे आग्रह पर गोविन्द गुरु का एक गीत सुनाया जिसे वे स्वयं गाते थे-

"मानगढ़ नी माटी नो मोल भूल नखे
देश की आजादी
हारू शहीद थई गया हजारों आपणा भाई
ई मगतर पूनम नो दिवास भूलों नखे.....।''[12]

दूसरे अध्याय का नाम'भूला-बिलोरिया' रखा है। जिसमें मानगढ़ हत्याकांड के संबंध में लेखक ने कई सवालों का उत्तर जानना चाह इस हेतु भ्रमण किया का उसी का उल्लेख यहाँ है। वहाँ के लोगों से मिले उनसे बातचीत की। इसके साथ सरकारी रिपोर्टों की खोज की जिनमें इनसे संबधित तथ्य मिल सके। लेकिन कोई विशेष तथ्य उपलब्ध नहीं हुए। मेवाड़ भील कोर के मुख्यालय से कुछ तथ्य हाथ लगे। जिनका उल्लेख परमानेंट आर्डर बुक में था।

"Copy of letter No.606 dated mount Abu, the 8th June 22 form Major H.R.N. prichard G.B.C. Secretary to the Agent to the Governer General in Rajputana to the Commandant Mewar Bil Corps, Kherwara."[13]

तीसरा अध्याय 'पालचित्तरिया' नाम से है जिसमें गुजराती धरती पर 'मानगढ़' की तरह ही आदिवासियों ने अंग्रेजी सरकार से लोहा लिया और वीर गति को प्राप्त हुए। पालचितरिया में सरकारों ने अपने-अपने निजी हितों को ध्यान में रखते हुए अलग स्मारक और शहीद दीवार बनवा दिए। पालचितरिया के निकट एक स्थल है 'लक्ष्मणपुरा का दहवाड़ा'। जहाँ पटेलों के खेत हैं। जहाँ पर अंग्रेजों व रियासतों ने मिलकर आदिवासियों का नरसंहार किया था।

"हाँ यही वो जगह है, जहाँ मिनख मराई हुई थी।"[14]

पालचितरिया में एक आन्दोलन के प्रणेता मोतीलाल तेजपाल का प्रभाव पड़ा। लेकिन यहाँ इस इलाके को सही संभालने वाले थे मंगला जी। यहाँ विभिन्न कुए होने की जानकारी भी मिली। जिनकों अब रेत से भर दिया गया। पूछने पर वहाँ के लोगों ने कुछ नहीं बताया। इसका कारण आदिवासियों की लाशों को डालकर दफना दिया ताकि इस घटना के कोई सबूत ही न बचे।

"कुए तो दर्जन भर बताए जाते हैं, जिनमें लाशों को डालकर ऊपर से मिट्टी डाल दी गई थी ताकि कोई नामों निशान न बचे।"[15]

इस हत्याकांड में अन्य स्थलों के आदिवासी पाल जागीर के अलावा अन्य स्थानों के आदिवासी सम्मिलित थे। उदयपुर के भौमट क्षेत्र बलीचा, छाणी, बोमटावला इत्यादि गाँव सम्मिलित थे। इसका कारण आदिवासी चाहे जिस स्थान पर के निवासी हो उनके साथ एक ही व्यवहार किया जाता है। चाहे वे राजस्थान हो गुजरात हो अथवा, मध्यप्रदेश के अथवा भारत के किसी अन्य भू-भाग के।

वहाँ के लोग इस संबंध बात करना भी पसन्द नहीं करते इसके पिछे कोई न कोई कारण है? लेखक ने कारणों का उल्लेख दिया।

"1. सबसे बड़ा कारण हताहत होने वाले वंशजों में इस घटना का खौफ है।

2. ...जमीन में मानव अस्थियाँ मिली, जिन्हें रफा दफा करना उचित समझा ताकि वहाँ बनाने वाले मकानों के बारे में उल्टी सीधी बातें न फैले।

3. इस घटना का अधिक प्रचार हुआ तो यह सम्पूर्ण क्षेत्र राष्ट्रीय बलिदान की दृष्टि से सुरक्षित घोषित करा दिया जाएगा।"[16]

पाल चितरिया के इस आन्दोलन के जनक थे मोतीलाल तेजावत जिनका जन्म 8 जुलाई, 1887 को वर्तमान राजस्थान के तत्कालीन उदयपुर राज्य में कोलियारी गाँव के ओसवाल परिवार में हुआ। हिन्दी, ऊर्दू, गुजराती भाषाओं का ज्ञान प्राप्त तेजावत ने भील समुदायों जनजागृति लाने हेतु हमेशा प्रयास किया और एक आन्दोलन आन्दोलन चलाया। ताकि वे अपने अधिकारों के जागृत हो सके वास्तविक मनुष्य का जीवन जी सके। लेकिन अंग्रेजी सत्ता ने देशी रियासतों के साथ मिलकर आन्दोलन को कुचल और उन्हें काफी समय बाद भी आत्मसर्पण करना पड़ा।

'साइबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक' हरिराम मीणा का यात्रावृतांत है। इसमें लेखक दिल्ली हैदराबाद और सुदूर अंडमानी द्विप समूह से निवास करने वाले आदिवासियों तक की यात्रा का वर्णन है। एक तरफ विकास के दावे और चकाचैंध में भागती जिंदगी और दूसरी तरफ तथाकथिक कहे जाने वाले विकास से ओझल जीवन जीने वाले आदिवासी जीवन का उल्लेख हुआ है।

दिल्ली हवाई अड्डे से लेकर हैदराबाद की यात्रा और वहाँ के दर्शनीय स्थलों का ब्यौरा दिया है साथ ही हैदराबाद का नया नाम 'साइबराबाद' होने का संकेत किया। इसकी व्याख्या मानवीय व्यवहार के साथ जोड़कर समझाया। मुहम्मद कुतुब कुली शाह और

भागमती के अमर प्रेम कहानी के माध्यम से साम्प्रादायिक सद्भावना का उदाहरण पेश किया। इन्हीं प्रेम संबंधों के कारण कुतुब शाह उर्दू के पहले धर्म निरपेक्ष कवि और शायर बन गए।

"कुफर रीत क्या होर और इस्लाम रीत
हर एक रीत में हैं इश्क का राज।"[17]

विशाखापटनम् और उवके निकट स्थलों की जानकारी दी। वहाँ का मौसम वहाँ की हरी भरी घाटियाँ, खूबसूरत वृक्ष आदि का परिचय दिया है। वहाँ यातायात और उस विभाग से संबधित कर्मचारियों के व्यवहार और कार्य कला का भी उल्लेख किया है।

भुवनेश्वर के मंदिर और तक्षण कला से सजित प्रतिमाओं का उल्लेख हुआ है। जिनमें काम सूत्रीय भंगिमाएँ भिन्न-भिन्न आयु के सौउदेश्य से बनायी जान पड़ती है। संगीत और वाद्य यंत्रों के आलिंगन मुद्राओं का ब्यौरा प्रस्तुत किया। जो उस काल की सामाजिक व्यवस्थाओं का चित्रण करती है।

भारत की चार प्रमुख पीठों के साथ जगन्नाथ पुरी का नाम भी आता है। जिसमें फैली भावनात्मक हिंसा का उल्लेख हुआ है। वहाँ के पूजारियों द्वारा बंगाली परिवार के साथ की गयी हरकतों का चित्रण हुआ है।

भारतीय इतिहास के महत्वपूर्ण घटनाओं में सम्मिलित है कलिंग युदध। जिससे सम्राट अशोक का हृदय हमेशा के परिवर्तित हो गया, का उल्लेख हुआ है।

कलकाता की भीड़ भरी रेलवे स्टेशन और कुलियों के रोजगार के सबंध में चर्चा की गयी। कलकता में अंग्रेजी सरकार द्वारा की गयी सांस्कृतिक घेराबंदी का चित्रण हुआ है। आज के भागते जीवन में किसी के पास नैतिक-अनैतिक, धर्म, दर्शन, सामाजिक दशाओं और उचित अनुचित पर बात करने का समय नहीं है। बाजारवाद का खुला चिट्ठा पेश किया।

नौजवान लड़के-लड़कियों की जरूरतों को पूरा करने के लिए कुछ भी गलत नहीं।यौन शुचिता का तो प्रश्न ही नहीं रहा। जबकि पत्नी सुशील हो और पति पैसा वाला होवाली धारणा भी जन्मी।

पंड़ो की गुंडागर्दी और जगह-जगह लोगों को मानसिक रूप से गुलाम करने की योजना का जिक्र भी आया है।

"मैंने मन में सोचा तुम जैसे लोगों कि तो इस देश में सदियों से मानसिक स्तर पर समझ और युनियन है ही।"[18]

पोर्टब्लेर से सेल्युलर जेल का उल्लेख किया। जोली बाय टापू का भी उल्लेख किया गया। इसके नजदीकी स्थलों पर विभिन्न प्रकार की वनस्थतियों को चित्रण किया गया। घने जंगलों से घिरा यह टापू विभिन्न प्रकार के पक्षियों और समुद्री जीवों का भी उल्लेख हुआ है।

सरदार बख्तावर सिंह जिन्होंने अपने नौकारी काल में आदिवासी समुदायों के मध्य समय दिया।इन्हें नजदीक से देखा समझा। उन्हीं पर बनी फिल्म 'मैन इन सर्च आफ मैन' में नंगे ओंग आदिवासियों के साथ नृत्य भी किया। अंग्रेजी फोजों ने इन्हें खदेड़ा, उनकी संस्कृति को नष्ट किया।उनका शोषण किया। जंगलों को निर्दयतापूर्वक नष्ट किया। यहाँ सभी का चित्रण बेखूबी से हुआ है।

'ऐन' और 'चाइला' की शादी और जीवन का उल्लेख कर बताया गया कि यदि आदिवासी लोगों को आधुनिक जीवन शैली में ढालने की कोशिश करेंगे तो व उनकी आयु-सीमा कम हो जायेगी। जिसका उदाहरण स्वयं 'एन' है।

पूर्व मध्यकालीन भारतीय स्थापत्य कला के बेजोड़ उदाहरण है महाबलीपुरम के मंदिर है। जिन्हें चट्टानों से काटकर बनाया गया है। जवान होती लड़कियों को देवदासी परम्परा नारी

शोषण का अंतिम बिन्दू था। इन्हीं इनकी नृत्य कलाओं में इनका कला नहीं बल्कि वेदना भरी आहें छटफटाहट भरती है लेकिन परिणाम विहिन। यहाँ देवदासी प्रथा का ऐतिहासिक विकास क्रम भी बताने का प्रयास किया लेखक इनकी दशा को समझकर कलकता के 'रेट लाइट एरिया' को याद कर लेते हैं।

यात्रावृतांत का अंतिम भाग चैन्नई से शुरू हो कर हैदराबाद के सफर के दौरान खत्म होता है। यहाँ सपेरों के माध्यम से हर स्थिति में विकल्प खोजने पर जोर दिया। अतः कह सकते है कि आदिवासियों को आसियानों को उजाड़ते समय का उनके निवास हेतु विकल्प होना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. www.prideofpinkicity.com
2. वही
3. वही
4. मीणा, हरिराम, धूणी तपेतीर साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली, सन् 2013, पृ0 25
5. वही पृ0 375
6. मीणा, केदार प्रसाद, आदिवासी कहानियाँ, अलख प्रकाशन, जयपुर, सन् 2013, पृ0 31
7. वही पृ0 40
8. मीणा, हरिराम, गजब का आदमी था बोत्या, अप्रकाशित कहानी,पृ0 04
9. मीणा, हरिराम, जवाब (लघु कथा) अप्रकाशित कहानी,पृ0 4
10. मीणा, हरिराम, आदिवासी अंचलों की यात्रा,शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली,सन् 2014, पृ0 19
11. वही, पृ0 64
12. मीणा, हरिराम, जंगल जंगल जलियावाला, शिल्पाय प्रकाशन, दिल्ली, सन् 2013, पृ0 20
13. वही, पृ0 57
14. वही, पृ0 84
15. वही, पृ0 84
16. वही, पृ0 80
17. मीणा, हरिराम, साइबर सिटी से नंगे आदिवासियों तक, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली सन् 2012, पृ0 24
18. वही, पृ0 53

अध्याय : द्वितीय

'धूणी तपे तीर' उपन्यास में अभिव्यक्त आदिवासी चेतना

अठारहवीं एवं उन्नीसवी सदी भारतीय इतिहास में नयेअध्याय जोड़ने वाली सदियाँ है। इन सदियों में भारतीय समाजों में परिवर्तन का समय शुरू होता है है। जिससे उन समाजों में सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक स्तर पर परिवर्तन आता है। इस परिवर्तन से भारीतय आदिवासी समाज की अछूता नहीं रहा। आदिवासी समुदाय भी इन परिवर्तनों से प्रभावित होता है क्योंकि आदिवासी समुदाय हिन्दू संस्कृति से प्रभावित हुआ था। ऐयप्पन और मजूमदार लिखते है कि 'आदिवासी समुदायों ने अपने निकट हिन्दू ग्रामीण समुदायों की संस्कृति और भाषा से संबंध जोड़ा।'[1]

'आदिवासी समुदायों में संस्कृतिकरण' का प्रभाव करीब-करीब अठाहरवीं सदी में आरंभ हो गया।'[2] 'दक्षिणी राजपूताना और गुजरात के सीमावर्ती प्रदेशों में गोविन्द गिर ने आदिवासियों में सामाजिक, धार्मिक सुधार और आर्थिक स्थिति में गत्यात्मक परिवर्तन लाने हेतु एक आन्दोलन चलाया। यह घटना बीसवीं सदी के प्रारंभिक दशकों की है।'[3]'गोविन्द गुरु ने अपने प्रिय शिष्य व साथी आदिवासी-हितैषी पूंजा के साथ मिलकर संप सभा के माध्यम से लगभग तीन दशकों तक सतत् क्रियाशील रहकर आदिवासियों में जागृति लाने का कार्य किया।'[4] गोविन्दगुरु अपने बचपन से ही आदिवासियों के दुःखों के चिंतित थे। भील मुखिया द्वारा कही बातों से स्पष्ट होता है कि गोविन्द गुरु आदिवासियों में चेतना लाने के व्याकुल हो रहे थे। अपने बचपन में अपने इलाके के भील मुखियों से ये बाते 'अपने ही साधन-सामान से बे मतलब परेशान किया जाता है। बगैर महेताना दिए खूब काम करवाया जाता है। काम मे इतना परिश्रम करवाया जाता है कि हमारे लोगों के सोचने की क्षमता निष्क्रय हो जाती है। इसलिए हमारे लोग अपनी थकान मिटाने के लिए नशे में लिप्त हो जाते है, अपने परिवार

वालों के लिए परेशानी का कारण बन जाते है। अपने बच्चों और औरतों को परेशान करते, मारते पीटते हैं। इस पर हमें सोचना चाहिए। यदि ये नशे की लत मिट जाए तो हमारा समाज खुशहाल जिंदगी व्यतीत कर सकता है। हम लोगों का जीवन ही सुधर जाऐगा।'[5]इसलिए गोविन्द गुरु अपने आदिवासियों को कहते हैं कि 'आप लोगों के जीवन में इतनी समस्याएं है कि जिन्हे सहजरूप से स्वीकार का जीवन जीना बड़ा कठिन है। इनके समाधान पर विचार करने की बजाय आप लोग इन्हें भूलने की कोशिश करते हो। जिसके लिए शराब पीने की आदत बना ली। प्राकृतिक वस्तुओं का सदुपयोग करना सीखो। जिनमें महुआ प्रमुख है। इसकी सब्जी बनाकर और तेल निकालकर अपनी समझदारी का परिचय दो, यह तुम लोग के लिए कल्पवृक्ष की भाँति है। शराब मत बनाओ। कर्म करते रहो। मेहनत पर विश्वास करो। चोरी मत करो। ईमानदारी से जीवन जीना सीखो। इसी से आप के समाज की उन्नति होगी।'[6]इस प्रकार गोविन्द गुरु ने आदिवासियों में नशे के प्रतिजागृति फैलाना आरंभ किया।'विशेषरूप से शराब के प्रचलन पर एक व्यापक मुहिम चलाई, जिसका परिणाम यह हुआ कि रियासती इलाकों में शराब की खपत में भारी गिरावट दर्ज हुई। अकेले बाँसवाड़ा रियासत में सन् 1913 में जहाँ शराब की खपत 18,740 गैलन थी अब घटकर 5,154 गैलन रह गई।'[7]

'शराब के नशे को गोविन्द गुरु तन-मन के काल मानते थे। नियंत्रित मात्रा में किया सेवन शरीर के लिए लाभकारी है लेकिन लत लगा लेना बेहद हानिकारक है।'नियंत्रित अथवा निश्चित समय और मात्रा में किया गया सेवन सांस के मरीज को अवश्य राहत पहुंचाता है।'[8] आदिवासियों मे नयी चेतना फूंकने वाले गोविन्द गुरु मूर्तिपूजा में कम ही विश्वास करते थे बल्कि वे मानव धर्म के सच्चे समर्थक थे। दीक्षा गुरु जो उनके बचपन में गुरु थे, राजगिरी गोसाई व मावजी के निष्कलंक समुदाय के गोविन्द गुरु प्रथावित थे। भारतीय भक्ति परम्परा मावजी- रैदास, दादू, व नरसी महेता आदि की परम्परा से संबंध रखते है।

एक बार गोविन्द गुरु आदिवासियों को बेगार प्रथा का विरोध करने व अपने अधिकारों के प्रति सचेत करते है। बेगार प्रथा के निरोध में एक व्यक्ति इसे अपने पारम्परिक कर्म से जोड़ता जवाब देता है। तब गोविन्द गुरु समझाते है 'परम्परा में बहुत कुछ होता आया है। व्यापारिकवर्ग को अपने इलाके में से सही-सलामत गुजारने के लिए आदिवासी समुदाय इसके एवज में 'रखवाली' और 'बेलाई' की वसूली सैकड़ों सालों से करते आए हैं। प्राप्त रकम का गांव या समुदाय के जनहित में उपयोग किया जाता था। लेकिन आजकल राज ने इस पर रोक लगा दी। यह जमीन हमारे बाप-दादों की पुश्तैनी है। इस जमीन पर ही हम अपना जीवन निर्वाह करते आए है। झाड़ झंखाड का उन्मूलन कर अपने खेत और घर बनाते आए है। इस प्रकार यहां सब कुछ हमारा है तो लगान किस बात की ली जाती है। इन जंगलों से प्राप्त उपजों पर हमारी ही तोहक है। फिर राज इन जंगलों के प्राप्त उपजों का ठेका देता है। मेरे समुदाय के लोग पुश्तों से नमक का व्यापार करते आए हैं। राज ने हमारे इस व्यापार पर भी पाबंदी ठोक दी। इसी तरह महाजन लोग साहूकार लोग हमें रात दिन अर्थिकरूप से लूटते रहते हैं।'[9]

भूमि बंदोबस्त कर कृषि कर में वृद्धि करना वनोपज पर पाबंदी लगाना आबकारी नीति, वांगड़ प्रदेश से गुजरने वाले व्यापारिक मार्गों पर नियंत्रण, नमक के स्वतंत्र उत्पादन व और व्यापार पर नियंत्रण आदि ऐसे विषय जिन पर आदिवासीजन धीरे-धीरे विरोध करने लगे।

इन विषयों पर मंत्रणा करने हेतु विभिन्न पालों के आदिवासियों का एक प्रतिनिधि मंडल उदयपुर महाराणा सज्जन सिंह के दरबार पहुंचा। दरबार में उनहें किसी प्रकार का संतोज जनक उत्तर नहीं मिला। परिणाम यह हुआ कि आदिवासियों में राज काज के प्रति शंका पैदा होना शुरु हो गयी। अब आदिवासी जन राज की शोषण भरी नितियों को धीरे-धीरे व्यापक स्तर पर समझने लगे।

गोविन्द गुरु वागड़ अंचल में धार्मिक गुरु के रूप में पहचाने जाने लगे। अब वे गोविन्द गिरी से गोविन्द गुरु बन गए। आदिवासियों के प्रति गहरा प्रेमभाव और आदिवासियों का गोविन्द गुरु के प्रति श्रद्धा भाव दिनोंदिन बढ़ता गया।

पूंजाधीरा जो गोविन्द गुरु का परम मित्र और शिष्य था। जिसने संप सभा नामक 1870 ई0 में एक संगठन बनाया। जिसमें उसके चुनिंदा साथियों का योगदान था। लेकिन पूंजाधीरा का यह संगठन सचारु रूप से नहीं चल पाया।

1883 ई0 में गोविन्द गुरु ने संगसभा का पुनः गठन किया। सामूहिक स्तर पर आपसी भाईचारे का भाव रखकर चलने के लिए वागडी बोली में 'संप' शब्द प्रयुक्त होता है। इस सभा के गठन हो जाने के बाद गोविन्द गुरु की लोकप्रियता और ख्याति में वृद्धि हुई। 'जय गुरुदेव' शब्द का प्रचलन हुआ। आदिवासी समुदाय में एक दूसरे के अभिवादन का माध्यम बना गया। धीरे-धीरे इस शब्द का अर्थ आदिवासी एकता से परिणत होता गया।

'सम्पसभा' का मूल उद्देश्य सामाजिक स्तर पर आपसी सोहार्द्र का भाव विकसित करना था। साथ ही आदिवासी समाज में व्याप्त बुराइयों से मुक्ति दिलाना था। जिससे आदिवासी समाज खुशहाली भरा जीवन जी सके। शराबखोरी से मुक्ति, आपसी विवादों का सुलझाव, शुद्ध दिनचर्या, आपराधिक प्रवृतियों से दूरी, परम्परागत पूर्वज के स्थान पर एकेश्वरवाद में विश्वास, भक्त बन चुके लोगों द्वारा गले में रूद्राक्ष की माला धारण करना। हवन आदि के माध्यम से वैचारिक शुद्धता लाना आदि कार्य-कलाप सामाजिक-धार्मिक सुधारों के परिगणित थे।'संप सभा' का एक प्रमुख भजन है जिसे आदविासी समुदाय द्वारा विभिन्न पर्वों के अयोजनों के समय गाया जाता था। इस गीत के बोल इस प्रकार है -

"सब हली भली ने संप मे रे जो रे मारा भाई
एक वीजा ने हाथे लई ने चाल जो रेमारा भाई
भगती ने भणजी कर जो रे मारा भाई
सब हली मली ने रे जो रे मारा भाई.....।"[10]

गोविन्द गुरु संपसभा के द्वारा अपने भक्तों को समय-समय पर सचेत करते रहते है। वे कहते हैं कि जो भी व्यक्ति सच्चे मन और तन से इस सभा का सदस्य और भक्त है। उस के

लिए आवश्यक है कि 'वे साफ-सफाई का विशेष ध्यान रखे, नशे से दूर रहे, शुद्ध खान-पान रखे, वृक्षों के प्रति सद्भाव रखे बेगारी नहीं करे, प्रातः उठकर दातुन करें, पानी को कम-से-कम तीन-चार बार छानकर पीए, हाथों को मिट्टी से अच्छी तरह साफ करें, स्नान आदि का ख्याल रखे, खाना ढ़ककर रखे, आपसी प्रेमभाव में रहना, भाईचारा बढ़ाना और किसी के दिल को ठेस नहीं पहुंचाए।'[11]

सम्पसभा के माध्यम से गोविन्द गुरु आदिवासियों में चेतना जागृत करते हैं। जगह-जगह विभिन्न प्रकार के सम्मेलन आयोजित करवाते थे। इन सम्मेलनों का मुख्य उद्देश्य संपसभा के सच्चे कार्यकर्ता तैयार करना व बेसहारे आदिवासियों की सेवा करना था। जिसका प्रमुख उदाहरण 'छप्पन्या काला' में की सेवा है जिसमें उनके सच्चे भक्त पूजा धीरजी, कुरिया दानोत, नानजी गरासिया, सुरत्या मीणा, कलजी, थानू लाल, जोरजी लखजी लेखा आदि के नाम गिनाए जा सकते हैं।

गोविन्द गुरु अपने उद्देश्यों को पूरा करने हेतु एक निश्चित जगह मानगढ़ पहाड़ी का चयन करते है। जहां पर दीपावली के त्योहार के बाद खास शिष्यों, भक्तों व सहयोगियों के साथ अपने आप को स्थापित कर लिया। पूंजाधीरा, जेता, बाला, लेम्बा, जोहरजी, हीरजी, कुरिया आदि शिष्य व उनके साथ थे। मानगढ़ पहाडी पर लम्बा विचार-विमर्श हुआ। सदस्यों में कार्य विभाजन की नियत योजना बनी। सम्पसभा के अपने आपमें एक विशेष सभा थी जिसके नौ विभाग थे'[12] संपसभा

1. धूणियों की स्थापना (प्रभारी सुन्दराव निवासी लेम्बा भक्त
2. जल प्रंबंधन (प्रभारी कलजी भीमा)
3. चिकित्सीय व्यवस्था(मनुष्य व पशुओं) (प्रभारी, जेता भक्त)

4. धार्मिक क्रिया कलाप, जिसमें पूजा पाठ व धार्मिक प्रचार आते है (प्रभारी जोरजी भक्त)

5. नैतिकता व रचनात्मकता के स्तर पर सद्गुणों का विकास (प्रभारी जोरजी भक्त)

6. आदिवासी अंधविश्वास और कुप्रथाओं से संबधित गलत आदतों से मुक्ति हेतु कार्यकर्ता और भक्त बनाना।

7. गुप्तचर व्यवस्था कायम करना (प्रभारी झाड़कड़ा गाँव निवासी थावरा)

8. अंतिम संस्कार व उसके बाद के क्रिया कर्म संबधि क्रियाकलाप(प्रभारी बाला भगत को बनाया गया)

9. नयें आदिवासी युवाओं को प्रशिक्षित कर रक्षा बदलों का गठन करना(प्रभारी पूंजाधीरा सहयोगी सदस्य थावरा)

अब वागड़ अचंल में गोविन्द गुरू की जाति धार्मिक गुरू के साथ संगठन कर्ता के रूप में भी फैलने लग गई। वे शिक्षित होने और स्वदेशी अपनाने जैसी बातों बताने लगे। विलायती वस्तुओं कों फिंरगियों की संस्कृति का पोषण करने वाली बताया। इसलिए विलायती वस्तुएँ तात्य है। अपने समुदाय के झगड़ो को राज के पुलिस थाने व कचहरियों से दूर रखों। वहाँ हमारी लूट होती है। सामूहित स्तर पर बने पंच पंचायतो से उनका निपटारा करो। गोविन्द गुरू प्रांरभिक वर्षो में अपने अन्य नायको जिनमें पूंजा, धीरजी, कुरिया दानोंत, नानजी गरासिया के साथ थानूलाल, कलनी, जोरजी लखपी, लेम्बा नगजी के नाम शामिल है, अपने आस पास के इलाके में लोकप्रिय हो चुके थे। अंग्रेजो ने जोरिया भक्त को फाँसी पर लटका दिया क्योंकि जोरिया और उसके साथी सम्प सभा के सच्च कार्यकर्ता होने के नाते संप सभा के कार्यो का प्रचार प्रसार कर रहे थे। पुलिस वालो को यह अनुचित लगा और वह इनका विरोध करने लगे तभी उनके सहयोगी गललिया ने आवेश मे आकर तलवार से पुलिस वाले की गर्दन धड़ से

अलग कर दी। पुलिस ने रूपा जोरिया व गललिया को मौत के जुर्म में गिरफ्तार कर लिया गया। अंग्रेजी सरकार ने तीनों साथियों पर अदालत में राजद्रोह का मुकदमा चलाया। यह अंगे्रजी सरकार का एक पड़यंत्र था। अदालत ने तीनों को राजद्रोह के मुकदमे के दोषी करार दिया। और तीनों को फाँसी की सजा दे दी। इसी के समानान्तर मध्यप्रदेश के टंट्या मामा को भी अंग्रेजी सरकार नेफाँसी पर लटका दिया। टंट्या मामा आदिवासी समुदाय में गरीब परिवारों की लड़कियों की शादी में भरपूर सहायता करता था। इसलिए आदिवासी समुदाय इन्हे टंट्या मामा के नाम से पुकारने लगा। अब टंट्या मामा हजारों आदिवासीयों के हृदय में बसने लग गया। आदिवासी लोग उनके समर्थक बनते गए। अंग्रेजी सरकार ने भी उन्हें फंसी तो दी लेकिन उनके शौर्य को सम्मान दिया।इसलिए

"टंट्याके जीवन कल में ही अंगेजों ने उसे नाम दिया वह था इंडियन रॉबिन हुड।"[14]

गोविन्द गुरू की ख्याति में दिनोंदिन बढोतरी होती रही थी। आंतड़ी, मोबाइ, तामता के साथ अब सम्पूर्ण आदिवासी अंचलों में डूंगरपुर, बांसवाड़ा, मतरामपुर, सूंथ, उदयपुर, प्रतापगढ़ आदि रियासतों में लोकप्रिय हो गए।

अंग्रेजी सरकार आदिवासी समुदाय पर नियंत्रण स्थापित करने हेतु जरायम पेशा कानून बनाती है जिसे सर्वप्रथम 12 अक्टूबर, 1871 ई. को बोम्बे प्रेसिडेंसी में लागू किया। जिसके तहत 12 वर्ष के ऊपर आयु वाले प्रत्येक आदिवासी व्यक्ति को पुलिस थाना में अपनी उपस्थिति दर्जा करनी आवश्यक थी। यदि अपने कार्य के सिलसिले में एक स्थान से दूसरे स्थान जा रहा है तो उसे यहाँ व वहाँ के संबधिन पुलिस थाने आवश्यक सुचना व उपस्थिति देनी होती थी। सरकार द्वारा राज्यपाल को प्रस्ताव देवर किसी भी आदिवासी समुदाय को आपराधिक समुदाय घोषित किया जा सकता था। इस तरह आदिवासीयों पर अत्याचार आरम्भ हुआ।

"यह कानून सर्व प्रथम बोंबे प्रसीड़ेंसी में 1871में लागु किया गया। जिसके तहत कोड़े मारे जाते,जूतों से पिटाई की जाती, पेड़ों पर उल्टा लटकाया जाता। कई उदाहरण ऐसे भी सामने आये जब उनके पांव काट दीये जाते ताकि वें कहीं घूम फिर न सके।"[16]

मेवाड मील कोर के कार्यवाहक कमांडेट जें.पी. स्टाक्ले अपने उद्देश्यों को पूरा करने हेतू निंरतर तैयार हो रहे थे। मानगढ़ पहाड़ी पर हो रही गतिविधियों की जानकारी लेने हेतु 30 अक्टूबर,1913 ई. को दो सिपाहियों को वहाँ भेजा गया। शासन के शोषण से दबे और उत्याचारों से अघाये आदिवासीयों ने वहाँ पहुंचे सिपाहियों को पकड़कर उनके साथ मारपीट कर दी। कुछ समय पश्चात आदिवासी प्रतापगढ़ रियासत के सूंथ किले से जा भिड़े। लेकिन हताशा हाथ लगी। इन घटनाओं से वहां का शासन तंत्र घबराया और अपने आप को सचेत किया। लेकिन एक बार भय आने के बाद निकलना मुश्किल होता हैं। इसलिए इन रियासतो(सूंथ, डूंगरपुर, बांसवाड़ा व ईडर) ने अंग्रेजी सरकार से प्रार्थना की कि हमें आदिवासीयों को कुचलने में सहायता प्रदान करे। गोविन्द गुरू अपने कर्म क्षेत्र में अटल विश्वास के साथ टिके रहे क्योकि महारावल विजय सिंह ने अपैल 1913 ई को गोविन्द गुरू को गिरफ्तार कर इस आशय से छोड़ देते है कि वे डूँगरपुर राज्य में प्रवेश नही करेगें। लेकिन वे अपनी बात पर अडिग रहे। उन्होंने डूँगरपुर राज्य में प्रवेश किया तो वहाँ के शासन तंत्र ने इनकी धूणियो को नष्ट किया, शराब पीकर अपवित्र किया। आदिवासीयों में असीमित भय पैदा करने की कोशिश की गई। इतना सब कुछ होन के उपरान्त भी गोविन्द गुरू ने अपना लक्ष्य नहीं बदला बल्कि अपने कार्यो को सम्पन्न करने व कराने और ज्यादा सक्रियता दिखाई। आदिवासी समुदाय मील, मीणा, गरासिया आदि की दशा में सुधार होने लगा। डा0 ब्रज किशोर शर्मा लिखते है ''उनके इन प्रयासों से भील अपने अंधकार पूर्ण प्राचीनतम एंव असभ्य हालात से उभरने लगे।"[17]

संस्कृति का राज्य ‘‘सम उपसर्ग के साथ संस्कृत की (डू) कृ (ञ) धातु से बना है। संस्कृति का अर्थ चिंतन तथा कलात्मक सर्जन की क्रियाएं समझनी चाहिए, जो मानव व्यक्तित्व और जीवन के लिए साक्षात् उपयोगी होते हुए उसे समृद्थ बनाने वाली है।’[18] इस प्रकार संस्कृति हमारी विचार प्रणाली का सुगठित स्वरूप है जो हमारे विभिन्न क्रिया कलापों में परिलक्षित होता है। वर्धा हिन्दी शब्द कोश में ‘परम्परा से चली आ रही आचार विचार प्रणाली के साथ संस्कार व रहन सहन जीवन पद्धाति को संस्कृति माना है।’[19] इस प्रकार कह सकते है कि किसी देश के मानव समुदाय के विशेष आचार विचार का समान्वय भाव ही संस्कृति है। आचार अथवा आचरण में भौतिक सभ्यताओं के आदि संस्कार सम्मिलित होते हैं तथा खानपान व रहन सहन के तरीके सत्कारी भावनाएँ समुदाय अथवा जाति विशेष का बाहरी ढाँचा/रूप। विचार का अर्थ अभौतिक सभ्यता के आदिम संस्कारों को सम्मिलित करते है। यथा विश्वास, कला, दर्शन, साहित्य वैचारिक मूल्य और चिंतन परपराएँ आदि। पारिवारिक परम्पराएँ जिनमें विभिन्न रस्में-रिवाज और विवाह संस्कार यज्ञकर्म आदि अपना महत्व रखते है। हरिराम मीणा कृत उपन्यास ‘घूणीतपे तीर‘ में वागड़ अंचल की अनूठी लोक संस्कृति का पर्याप्त चित्रण हुआ है। वहाँ के आदिवासी जीवन दर्शन, लोकगीतों, धार्मिक अनुष्ठानों व सामाजिक क्रियाकलापों को पर्याप्त जगह दी है। कुछ परम्परा समाज के लिए विनाश का कारण बनती है लेकिन वे लम्बे समय से चली आ रही होती है।इसलिय उन्हें नकारना आसान भी नहीं होता। इस प्रकार उसी रूढ़ीवादी परंपरा को हटाना गोविन्द गुरु आवश्यक मानते है। सम्प सभा और भक्त आन्दोलनने इस कार्य में अग्रणी भूमिका है।

‘‘दरअसल, यह काम भगतों के माध्यम से समाज सुधार का महत्वपूर्ण कार्य था। जिसमें कुप्रथाओं, अंधविश्वासों और बुरी आदतों से मुक्ति शामिल थी।’’[20]

आदिवासी परम्परा में सामूहिक नृत्यों का प्रचलन है। जिसमे लड़के-लड़कियाँ और स्त्री पुरूष साथ मिलकर नाचते हैं। यह नृत्य अधिकांश मेलों-त्योहारों पर होते हैं।(मानगढ़ की

पहाड़ी पर अलग-अलग पालों के आदिवासी नृत्य में झूम रहे थे) गोविन्द गुरु ने आदिवासी को एकत्र हो कर नाचने खेलने कुदने अपने विकास की भावी योजना बनाने के लिए एक उचित जगह उपलब्ध करवा दी वो वह जगह थी –मानगढ़ पहाड़ी। मानगढ पर अलग-अलग पालों के आदिवासी नृत्य कर रहे थें।

"हाथजोड़िया पगपासणियाना जालणियाना, उडणियाना, पादुकचाला, मुरिया, गैर गवारी आदि नृत्य के साथ गीत भी गए जाते थे। "[21]

गीतो के साथ वाद्ययंत्रो का उपयोग लिया जाता था मांदल, झांझ, खरताल, थाली, मटका, ढोलक, सुषिर वाद्य यंत्र में बासुरी का उपयोग किया जाता था। इसी क्रम में पादुकचाला नृत्य के गीत गूंज उठे-

''काली रे कोयलड़ी ते बन बगड़े ने गयी ती रे
वन बगड़ा में रेती ने वन वेणी खाती रे
आयवो रे।"[22]

इन नृत्य गीतों का प्रभाव रह था कि एक तरफ तो आदिवासी शासन तंत्र से सताये जाने के उपरान्त भी सांस्कृतिक संदर्भो को जीवित रखते है। दूसरी तरफ विवाह पूर्व सगाई की रस्म के लिए मेले त्योहांर बड़े कारगर साबित होते है क्योंकि इन मेले त्योहारों में अनजान युवक युवतियाँ आकर्षित होते थे। यही आकर्षक धीरे धीरे सगाई संबंधों तक पहुँच जाता। बड़े बुजुर्गों की मध्यस्ता से रस्मों को पूरा किया जाता। इन्ही मेलों की एक खास विशेषता थी। आपसी प्रेम और भाईचारे की भावना का बढावा देना। इसका जीता जागता उदाहरण था संप सभा का यह भजन

''सब हली मली ने सम्य मे रें जो मीरा भाई
एक वीजा ने हाथे लाई ने चाल जो रे मीरा भाई

भगती ने भणती करजो रे मीरा भाई

सब हली मली ने रेजो रे मारा भाई.....।"[23]

आदिवासीयों की अपनी मौलिक संस्कृति है। इस मौलिकता में नया जुड़ना अहम बात है। इसका कारण "आदिवासी जीवन दर्शन में निरन्तरता एंव गत्यात्मकता रही है। यही कारण है कि शास्त्रीय प्रतिमान नहीं बनाये जा सकते है।[24]

मिथक आदिवासी परम्परा के वाहक है जो यह जानकारी देते है कि आदिवासी संस्कृति कितनी पुरानी है। इसलिए 'घूणी तपेतीर'में मकना हाथी वाली कथा एक मिथक है। जो दुराचारियों के विनाश की पूर्व कल्पना पर टिका है। यह मृत्यु और भविष्य के प्रश्न से संबधिक मियकीय घटना है जिसको आधार गोविन्द गुरू एक भजन रचते है।

"अहुडा वाला पाटोड़ में घाणियो धलाये है।

डाकणी जोगिणी घाणी धलाये है।

तेली तम्बोली घाणी पेले है

मकनो हाथी घाणो पेले है।"[25]

भावार्थ यह है भले मनुष्यों में अंधविश्वास पैदा कर अपना स्वार्थ साधना दूराचारी लोगों का कार्य है। यह लोग अंधविश्वास के सहारे सीधे साधे मनुष्यो की आत्मा को आहत करते है उन्हें सताते है। इसका सीधा अर्थ कलयुग आ गया। कलयुग में दूराचारियो की ही चलती है। ईश्वर के घर देर भले ही हो अंधेर नहीं इसलिए इन दुराचारियों को नष्ट करने के लिए मकना हाथी भेजता है। यह हाथी पापियों को पेलने के लिए उन पापियों से भी बड़ा घाणा चलाता है जिसमें उनको पेलकर उनका सर्वनाश कर देता है।एक अन्य मिथकीय कथा मेगड़ी विवाह का भी उल्लेख हुआ है। जिसमें भगवान विष्णु ब्राह्मन के वेश में श्रृंगी ऋषि की पुत्री मगेड़ी के विवाह प्रस्ताव को चार दिन उपरांत स्वीकार करने को कह कर चले जाते हैं। यह चार दिन चार युगों का प्रतीक है। सृष्टि के गतिमान रूप को रेखांकित किया है।

"मारवाड़ में एक संत हुए हैं हीरजी भाटीवे मगेडी की कथा को गाया करते थे "[26]

शिक्षा संस्कृति को प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूपों में प्रभावित करती है गोविन्द गुरू ने अपने जागृति आन्दोलन में शिक्षा को भी सम्मिलित किया। हरिराम मीणा ने अपने उपन्यास 'धूणी तपे तीर' में आदिवासी शिक्षा के महत्व को रेखांकित किया।

भले बुरे का फैसला करने के लिए पढना आवश्यक है क्योंकि इसी के सहारे उसकी समझ उतरोत्तर प्रगति करती है। जिससे वह जीवन के फैसले स्वम् ले सकता है। जीवन में भले बनने के लिए भले विचार भी जरूरी है।

"मैं तो इनको समझा रहा हूँ कि पढने लिखने से ही से ही आदमी को समझ आति है"[27]

गोविन्द गुरू खास पूंजपारगी के घर पर कही बात भी शिक्षा के महत्व को स्पष्ट करती है

'अक्ल के घोडें पर सवार होकर चेतना आगे बढ़ती है।[28]

लेकिन इस प्रकार की बातें भक्त लोगों के समझ मेंआसानी से नहीं आती। तब कुरिया भक्त कुछ समझाने की कोशिश करता है भक्त और समझदारी का आपसी मजबूत संबंधों का रिश्ता है। जितनी अक्ल होगी उतनी ही समझदारी ज्यादा होगा और समझदारी से ही चेतना आती है लेकिन अक्ल पहली शर्त है। अक्ल के लिए आवश्यक है शिक्षा और थोड़ा बहुत अनुभव हो तो शिक्षा के सहारे उसे तराश सकते है। तराशने के बाद वह समझ में बदल जाता है। इसी के माध्यम से ना समझ लोगों में समझ पैदा की जाती है। इसी समझ से जागृति आती है। अब आदिवासी समुदाय धीरे-धीरे गोविन्द गुरू बाते समझने लगा। गुरू ने समझाया कि महाजन लोग बिना कुछ किए हमसे ज्यादा धनवान हो जाते है राज के आदमी केवल मौज

करते फिरते लेकिन अथाह सम्पति एकत्र कर लेते है हम लोग रात दिन महेनत करते है लेकिन हमें कोई ज्यादा फल नहीं मिलता। इसके पिछे छिपे कारणों को समझना होगा। यह कारण आसानी से समझ में नही आऐगें। क्योकि यह कई वर्षो से हमारी जहन में बैठे हुए हैं। इसलिए आने वाली पीढी को शिक्षित करना होगा। शिक्षिता करने का बेहतर तरीका जगह जगह पर विद्यालय खोलना अच्छा होगा। इनमें शिक्षा का प्रचार प्रसार करना होगा। जिसमें जागृति में गति आयेगी। शिक्षित युवको को रोजगार दिया जाए।डूंगरपुर, खैरवाड़ा, उदयपुर व अन्य शहर में जाकर रोजगार करना विद्यालयी शिक्षा की मुहिम चलाई जाए। अक्षर ज्ञान के साथ साथ सम्प सभा के मुद्दों पर भी ध्यान लगाया जाए।

हरिराम मीणा के शब्दों में कह सकते है ‘‘शिक्षा के जो प्रमुख उद्देश्य तय किये उनमें अक्षर ज्ञान के अलावा जन जागृति के मुद्दे थे और ये कमावेश वही थे जो संप के सिद्धान्त थे।’’[29]

सम्य सभा के विभिन्न उद्देश्य आदिवासी समाज में शैक्षिक विकास को ध्यान में रखककर बनाए थे। भक्तो का झूठ नही बोलना, शालीनता का व्यवहार, बाल विवाह न करना, दुखी और आहत आदमियों की सेवा करना, कन्या मूल्य छोडना, दहेज का विरोध करना व न देना न लेना विधवाओं के प्रति न्याय करना उनकी पुनः शादी करना अस्पृश्यता निवारण करना, परस्त्री के प्रति सम्मान भाव रचाना वृक्षों के प्रति पे्रमभाव रखना व हरे वृक्षो को नहीं काटना आदि उदेश्य शैक्षिक उन्नति को जागृत करने वाले है।’’[30] गोविन्द गुरू स्वंय को आदिवासियों का गुरू मानतें इसके पिछे अपने उदेश्यों में अपने शिष्यों को गुरू मंत्र देकर उनका शिक्षिता कर उनका उत्थान करना शामिल करते है। गोविन्द गुरू बूंदी अखाडे से संबंध रखने वाले राजगिरी गोसाई के शिष्य थें। इन्ही के प्रभाव के कारण में अपने कर्मोंको जोड़कर वे गोविन्दा से गोविन्द गुरू हो गए। दयानंद सरस्वती का प्रभाव इन पर भी पड़ा इसलिए

स्वदेशी का उपदेश दिया करते थे। धूणियों की स्थापना करना एक यज्ञ कर्म समझते है, ढोंगियों का विरोध भी करते है।

आदिवासी समाज का इतिहास लिपि बद्ध की बजाए अलेख्य अधिक है। अतः कह सकते है मौखिक परम्परा का इतिहास जीवन दस्तावेज है जिसके इर्द गिर्द समुचा आदिवासी समुदाय सामुहिक रूप में जमा रहता है।लोक गाथाएँ इनके जीवन की अकूत सम्पदा है। जो प्राचीन काल से ही चली आ रही है। कब से? यह आजतक अनिर्णित है। हिन्दू धर्म में मनुष्य उत्पति की कथा की भाँति इनके यहाँ पर भी मनुष्यउत्पति की कथा है जो बिरमा व भैमाता के रूप में प्रचलित है। जिसमें बताया गया है कि मिटटी का उपयोग लेते हुए भैमाता व बिरमा ने इस धरती पर सर्वप्रथम जिस मनुष्य को बनाया उसका नाम 'भील' रखा था। इसी के तदन्तर मे दूसरा जोड़ा गढ़ा जिसका नाम 'मीणा' रखा था। भीलो को बनाते वक्त काली मिट्टी मिली इसलिए इनका रंग काला रह गया लेकिन 'मीणा'आदिवासीयों का रगं थोड़ा भुरा हो गया। फिर बिरमा के निवेदन से भैमाता ने कुछ नए जोड़े बनाए जिनका रंग सफेद और लाल था। यही लाल रंग वाले मनुष्य फिंरगी है। जिनको कुछ जादू मंतर की जानकारी भी है। अतः कह सकते है कि धूणी तपेतीर में लोकचेतना को अभिव्यक्त करने वाली गाथाओं का भी समावेश है।

विश्वास संस्कृति का हिस्सा होता है। विश्वासमें जब जड़ता आ जाती है तब वह व्याधि का रूप लेकर समाज को पंगु बना देता है जिसमें तरह-तरह के अंध विश्वास फैलते है गोविन्द गुरू अपने भक्तों को अंधविश्वासों से दूर रहने को शिक्षा देते है।'अनजाने में कही-कही औरतों को डायन बताकर मारा पिटा जाता है। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए जानवरों की बली दी जाती है। बीमार हो जाने पर उपचार में झाड़ा-फुंक, जादूमंतरों का सहार लिया जाता है और वानस्पतिक उपचारों से किनारा किया जाता है। लोगों को चमत्कार दिखाई देता है। यह सब बहकाने के काम है। इन अंधविश्वासों की बजाए समस्या की जड़ पहचानों और उसे वही से

नष्ट करों, चमत्कारों के चक्कर में मात पडों। आप सब लोग इन बातो कों समझो।'[31] आदिवासी समुदाय प्राचीन काल से ही सामुहिक जीवन जीता आया है। गंगा सहा या मीणा भी लिखते है कि आदिवासी साहित्य में '' आत्मकथा लेखन केन्द्रीय स्थान नही बना सका, क्योंकि आदिवासी समाज आत्म से अधिक समूह से विश्वास करता है। सामूहिक रूप में कार्य सम्पन करते है।"[32]

धर्म संस्कृति का एक हिस्सा होता है धार्मिक परम्पराएँ आदिवासी समुदाय की जड़े है। वैसे तो आदिवासी समुदास का धर्म प्रकृति धर्म है। इसमें जल, जमीन, जंगल के साथ जानवरों का भी शामिल किया जाता रहा है। यह सही भी है। क्योकि आदिवासी समुदास मिश्रित कृषि में विश्वास करता है। जंगल में ही निवास करने के कारण जंगलो जानवारों से भी अच्छी तरह परिचित होते है। पालतू जानवर तो इनके जीवन का हिस्सा है। उपन्यास धूणी तपेतीर में दल्ली की कहानी के माध्यम से इन समुदायों का पशु प्रेम अच्छी तरह प्रदर्शित हुआ है। दल्ली के साथ अनहोनी घटना के बाद जब दल्ली वापस नहीं लोटी तो बकरियों में सून्न छा गयी। धे इन्तजार करते करते थक गई फिर पांच्या के घर चली गयी।लेकिन आंगन में सिकुड़कर खड़ी हो गई। उनके बच्चों ने माताओं के भावों को भांप लिया और दूध तक नहीं पीया। जानवरों के प्रति समझ प्रदर्शीशित करता यह कथन -

"जानवर घायल कर देता है मार कर खा जाता है।लेकिन इस तरह आबरू नही लेता।"[33]

गोविन्द्र गुरू एकेश्वादी थे। आवागमन से मुक्ति पाने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य सद्कर्मो में विश्वास करे, नैतिक जीवन जीए। उनका कहना था आप लोग स्वच्छता से साधारण सुखी जीवन जीयो। मांस का सेवन नही करें। महिलाओं के प्रति सम्मान की भावना रखो। लड़की मूल्य छोड़ना और विधवा विवाह पर स्वच्छ भाव रखना उच्च सोच का प्रतीक

है। किसी के बहकावे में मत आओ।'हिंदी जातियों में पथ भ्रष्ट की स्थिति पैदा हो गयी है। कोई ब्राह्मण नही रहा, उनकी विधवाएं अवैध संताने लेकर धूम रही है। राजपूतों का अपनी कन्याओं के प्रति क्रुर रवैया है। आप लोग इन बातों को अच्छी तरह समझों। लगन व परिश्रम पर विश्वास रखो।'[34]

प्राचीन कल में स्त्री को पूर्ण स्वतंत्रता थी। शिक्षा का स्तर भी अच्छा रहा होगा क्योकि अपाला, घोषा आदि नाम ऐतिहासिक ग्रंथों में मिलता है। महाभारत में कृष्ण की बहिन सुमद्रा घुड़ सवारी करती थी। धीरे धीरे स्थितियाँ परिवर्तित होती रही। स्त्री को घरों की दीवारों तक सीमित कर दिया। आदिवासियों में स्त्री को काफी हद तक स्वतन्त्रता प्राप्त थी। फिर भी गरीब आदिवासी महिला शोषण का शिकार होती थी। अंग्रेजी शासन काल में औरतों की दशा शोचनीय थी। अंग्रेजी शासन के उच्चाधिकारियों का आदिवासियों के प्रति व्यवहार बहुत खराब था। गैर आदिवासियों औरत का शोषण वस्तु मानकर करते रहे। दल्ली का शारीरिक शोषण कर हत्या कर देना इसका सटीक उदाहरण है। साथ ही उन लोगों का औरत के प्रति शोच का भी पर्दापाश होता है जिसमें उन्होने 'एक टन गिंदोड़ी' 'वन परी'जैसे शब्दों का प्रयोग किया है। शोषण के उपरान्त डराना धमकाना भी किया जाता है। इस बात का सबूत देता एक अंगेज अधिकारी का कथन -

''थोड़ी देर में ठीक हो जायेगी। कोई भी इल्जाम लगा देना,
ससुरी मुंह ही नही खोलेगी।"[35]

दूसरी तरफ गोविन्द गुरू ने आदिवासी लड़कियों मे ऐसी चेतना जागरत करते है कि वह पुरूषों के साथ कंधा मिलाकर खेलती-हसंती और अंततः युद्ध भूमि में भाग लेकर शहीद होती है। कमली का खुला व्यवहार इसका जीता जागता उदाहरण है। जो गैर नाचने में अन्य लड़कियों के साथ लड़को के साथ नाचती है। जब सम्य सभा के सदस्य में तीर धनुष चलाने

का प्रशिक्षण दिया जाता है। इस कार्य का अभ्यास किया जाता है तब कमली अपनी सहेलियों के साथ युद्ध में सम्मिलित होने के लिए गोफन चलाने का अभ्यास करती है। इसके साथ इस अभ्यास में उसकी अस्मिताकी सुरक्षा भी जुड़ी हुई है और इसलिए अपनी सहेलियों से भी इमें सीखने का आग्रह करती है। अपनी सुरक्षा हेतु गोफन चलाना सीखना आदिवासी औरत में आई चेतना का प्रतीक है। मानगढ़ छयाकांड में आदिवासी औरतों गोफनों कुल्हाड़ियों से सज्जित होकर फिरंगियो का मुकाबला करती है। उन्होनें समुह बनाकर मोर्चो संभाला और शहीद हुई इससे स्पष्ट होता है कि इस उपन्यास में आदिवासी महिलाएं अब जागरत हो रही है और तत्पर होकर हर स्थिति का सामना करने में सक्षम होती जा रही है। अब आवश्यकता इस बात की है कि गैर आदिवासीयों का इन आदिवासी औरतों के प्रति नजरिया बदले।

आदिवासी औरत को प्राचीन काल में अपने भविष्य को निर्मित करने की छुट रही है विवाह जैसे बडे और जिम्मेदार फैसले भी वह स्ंवय ले लेती है। भगोरिया एंव घोटुल परम्पराएँ इसकी चश्मदीद गवाह है। जिनमें आदिवासी औरत अपने मनपंसद वर का वरण करती है। किसी की किसी प्रकार की विवशता नहीं। जब उसे लगे उसका वैवाहिक जीवन ठीक ढ़ंग से नही चलरहा है तब वह विवाह विच्छेद कर दूसरा विवाह कर लेती है। यही प्रथा आपके भौतिवादी युगमें पुनः शुरू हो रही है क्योंकि आदिम संस्कार कभी भी समूल नष्ट नहीं होते हैं। इसलिए आये दिन भारतीय न्यायपालिका द्वारा महिला सुरक्षा में कई फैसले देती है और महिला को उसका हल्फनामा सुरक्षा उपलब्ध कराया जा रही है यहाँ यह उपन्यास प्रगतिशील होता दिखाई देता है जिसका सटीक उदाहरण कमली का रात में अपने धर से बहार दूसरे स्थान पर रहना महिला स्वतन्त्रता का दूसरा नाम है लेकिन आदिवासी महिलाओं का अपने पति के प्रति गहरा प्रेम भाव होता हैं।

आदिवासी समुदाय में पति पत्नी के बीच गहरा रिश्ता होता है। औरतें इस रिश्ते को सामान्य तौर प्रदर्शित नहीं करती। इसलिए अपने प्रेम का उजागर गीतों के माध्यम से करती है

कहते है कि गीत हृदय की आवाज जुवां पर आकर फूटती है। गनी को अपने जवानी के दिन याद आते है ज बवह कमली के बालों मे वन मोगरा के फुलों का गजरा गूंथ देती हैं। तब उसे अपने पति संग गाये गीत याद आता है जिसके बोल उसके हृदय में फूटने लगते है।

''चमचम चमके चूनड़ी बनजारा रे बनजारा रे

आ थोड़ी से मेरे संग नाच ले बनजारा रें .....।"[36]

यह तो हुआ पत्नी का अपने पति के प्रति प्रेम भाव का प्रदर्शन। अब पति भी अपनी पत्नी के प्रेम संबंधो को प्रदशिर्त नहीं कर पाता है। यह ईश्वर ने हर व्यक्ति के दिलमें प्रेम की अनुठी तिजोरी बनाई है जिसकी चाबी सपाट बयानी में नहीं चलती। अन्दर से हिलकोर खाने के बाद जब उन हिलकारों की आवाज जबान पर आकर दस्तक देती है तब उसके वास्तविक होने की अनुभूति होती है। गरल्या दीना की पत्नी मर गई। जिसे वे तारों के टूटने मे उसकी आत्मा तलाशता था। तब कभी - कभी उसे यह गीत याद आ जाता था जो उसकी पत्नी उसे संबोधित कर गाती थे।

''राणापुर की कांचलीमाय भरग्यों रे बिछुड़ा

हाँ, बालयगी मरी जाऊँगी।"[37]

अपने मन के भावों को गीतमय वाणी मे प्रकट किया जा रहा है। लोकगीतों में भरी उनकी लोक कथाएँ नई जागृति प्रदान करती है। बाहर से आये लोगों के दबाव ने उन्हे यह महसूस करवा दिया कि उन्हें अपनी संस्कृति बचानी है इसलिए वेसचेत हो गए। डटकर खडें हुए। फिरंगियों और देशी रजवाड़ों ने वहाँ अपना प्रभूत्व कायम करना चाहा, उनकी संस्कृति को मिटाने का प्रयास किया गया, तुम तो जंगलवासी हो दुनियाँ के बारें में नही जानते हो ऐसी हीन भावना भरने की कोशिश की गई। उन्हे असभ्यता की परिभाषा में समेटा गया, असभ्य होने का बोधकरवाया गया। तब गोविन्द गुरू व उनके भक्त कार्यकर्ताओं ने इसे बचाने का

बीड़ा उठाया। अपनी आवाज उठाई, जमीनी संघर्ष शुरू किया। जगह-जगह उन्ही तयाकथिक सभ्य कहलाने वाले लोगों का और उनकी नितियों का खुल्ला विरोध किया। यही विरोध कालान्तर में एक उग्र आन्दोलन में बदल गया।

भारत में शासन स्थापित करने का ब्रिटिश सरकार का मुख्य ध्येय भारत का आर्थिक दोहन था। चाहे जिस तरीके से हो सके दोहन तो करना ही है। इसलिए ब्रिटिश अधिकारियों का ध्यान भारत की अकूत वन सम्प्रदा पर गया। दक्षिणी राजस्थान व उससे सटे प्रदेश इससे अछूते नही रहें।ब्रितानी हुकूमत ने वनों का अधिकाधिक लांभाश प्राप्त करना चाहा। उनकी नीतियों के मुताबिक द्रुतगति से वन विनाश को बढावा मिला। उनका ध्यान वन का विनाश कर उनसे इमारती लकड़ी प्राप्त करना और समतल कृषि योग्य जमीन प्राप्त कर अधिक कर एकत्र करना था। जिससे अरावली की वादियां नग्न होती गयी और आंदिवासी दबते गए। लम्बा चौड़ा जंगल रियासतों से मिली फिरंगियों की ललचाई आँखों में आ गया। मुख्य भूमिका तो रियासती मुखियों की थी जो फिरेगियों को खुश करने के लिए आदिवासी आशियनों को बिखेर रहे थे। वहाँ निवास करने वाले जंगली जानवारों का शिकार किया गया जोहमेशा पारिस्थितिकी संतुलन को बनाए रखतें है। शिकार गृह बनाने की योजना बनने लगी। गोविन्द गुरू उन्हे शिकार गृह बनाने से रोकते है। जोकि प्रत्यक्ष तो बेगार का विरोध है लेकिन परोक्ष कारण वन्य जीवन सुरक्षा की भावना भी है। गोविन्द भक्त पहले से ही वृक्षो के रक्षा कर है अब उनमें यह भावना और अधिक रूप से घर करने लगी।उन्हें रात मे छूना पाप मानन लगें। जिसमे थावरा का उदाहरण सटीक लगता है।

''मगर रात मे पडों व वनस्पतियों को जगाना पाप है।''[39]

प्रकृति की प्रत्येक वस्तु पर उनका अपना अधिकार था। प्रकृति के साथ गहरा तादाम्य था। लेकिन अंग्रेजी सरकार इनके तादाम्य को तोड़ना चाहती थी। जिससे उनमें बौखलाहट पैदा हो रही थी गोविन्द गुरू ये वचन स्पष्ट कर देते है कि

‘‘हमारी जमीन जंगल पहाडों और नदी नालो पर से हमारे पुस्तेनी हक खत्म किये जा रहे है।’’[40]

अतः कह सकते है कि आदिवासी संस्कृति आदिवासी जीवन की सहज और सरल अभिव्यक्ति है, उसमें न तनिक भी लाभ की आशा है न ही कोई गुंजाइश बल्कि आंनदमय समष्टिगत जीवन सामजस्य है। जिसे वह अपनी कृतज्ञता प्रकृट करता है यही आनंद, यही कृतज्ञता और यही सामजस्च सहीत जीवन उसकी विशेषता है पहचान है। इसे गोविन्द गुरू ने जागृतिमय अभियान से बुलंदी पर पहुँचाने में अपना सहयोग प्रदान किया और आदिवासियों ने अपना काम समझ कर पुरा किया गोविन्द गुरू उनके कर्मों के माध्यम बने। इसलिए उनके जीवन में गोविन्द गुरू के प्रमि एक अनूठा ही भाव हैं जिसे वह भूल नहीं पाते। यहाँ बिरसा मुडा के राज ज्यादा महत्वपूर्ण हो उठते हैं।

‘‘हमारे पुरखों ने चीतो-बाधो से लड़कर
जमीन बनाई इस जमीन को
छीनने वाले तुम कौन हो
हम तैयार है तीर-धनुष लेकर लडेंगें
साहूकारों और अंग्रेजों और जमीदारों से।’’[41]

आपराधिक जनजाति अधिनियत, जिसमे आदिवासी जीवन में आमूलचूल परिवर्तन ला दिया, बड़ा दमनकारी अधिनियम था। इस अधिनियम के प्रभाव से आदिवासी जीवन अस्त-व्यस्त होता गया।आदिवासी समस्याओं का अम्बार बढ़ता जाता है। इस समस्याओं को दो भागों में विभजित कर सकत हैं। दिकु या बाहरी लोगों की घुसपेट और अतिक्रमण तथा आन्तरिक समस्याएं। बाहरी शसकों की उपनिवेशवादी और साम्राज्यवादी नीतियों के तहत शोषण पराकाष्टा पर पहुंच गया। उनके अस्तित्व पर ही खरतरा मंडराने लगा ।अपने

अस्तित्वको बचाने के लिए बाहरी और आन्तरिक दोनों शत्रुओं से मुकाबला किया। कभी बहारी लोगों के साथ मिलकर तो कभी अपने ही समाज के लोगों ने नेतृत्त्व में। लेखक ने कथा को विस्तार देते हुए मेवाड में अंग्रेजी सरकार के हस्तेक्षप को दिखाया।

अंग्रेजी सरकार नेकौंसिल ऑफ़ रिजेंसीका गठन किया। राजकाज में नये कानूननों के तहत आदिवासी पर प्रतिबंध लगाये गये। शोषण की प्रक्रिया तेज हुई। जिनमें नई आबकारी निति का लागु करना और जंगलात विभाग खोलना और सबसे बड़ा जरायम पेशा कानून लागु करना था। गोविन्द गुरु के शब्दों में

"रियासत का कोई जागीदार बिना मेहताना भूखे पेट किसी से बेगार करवाता है तो वह कहाँ का न्याय है ...खेती पर लगन बढाया जायेगा। इसलिय खेतों की नाप जोक की जा रही है।"[42]

गोविन्द गुरू बचपन में ही अपने आस पास के इलाके में अपने साथियों व अन्य बड़े बुजुर्गो को यह समझाते आये कि हमारे ऊपर अत्याचार करने वाले लोगों का विरोध करना चाहिए। बेगार नहीं करनी चाहिए। सम्प सभा का गठन एक साधारणा घटना मात्र नहीं थी।बल्कि प्रायोजित व्यवस्था थी। जिसके मूल में आदिवासी चेतना के साथ आदिवासियों में राजनैतिक सर्तकता व समझ भी विकसित करना था। हांलाकि गोविन्द गुरू हर जगह यह कहते मिल जाते है। कि उनका उद्देश्य 'भील राज' की स्थापना करना नही है और यह बात सच्च भी है क्योकिं उनका मूल उद्देश्य तो भक्ति करना था। भक्ति के माध्यम से आदिवासियों मे सुखद वातावरण पैदा करना था। अंग्रेजी सरकार को लिखे गए पत्रों से ज्ञात होता है कि वे सच्चे साधू थे। देशी रजवाड़ों द्वारा तंग किए जाने के कारण मानगढ़ पहाही पर सुरक्षित महसूस कर निवास करते है। गरीब और ना समझ आदिवासी उनके शिष्य है। उनकी समस्याओं व दुखों से अवगत होते है। गुरू होने के नाते उनके शिष्यों की समस्याओं व दुखों

को राज के सामने प्रकट करते हैं कि ताकि राज कुछ सहायता कर सकें। आदिवासी भी अपनी जीवनचर्या मे आराम पा सके थोड़ा सुख प्राप्त कर सके। देशी रजवाड़ों और अंगे्रजी सरकार द्वारा उनके प्रति उपेक्षा भरे व्यवहार के कारण हारकर 'मरता क्या नही करता' कहावत पर चल पड़ते हैं। यह उनकी मजबूरी है। आदिवासी समुदाय अपने अनुशासन में रहते है किसी भी तरह का कही पर भी हस्तक्षेप नहीं करते। सामूहिक जीवन शैली व सामूहिक जनतंत्र मे विश्वास करते है। जवाहर नेहरू के शब्दों में कह सकते है-

"आदिवासी समुदाय में मुझे खूबसारे ऐसे गुण दिखाई देते है जो भारत में वास करने वाले लोगों में, चाहे वे शहरी अथवा ग्रामीण अथवा अन्य कई स्थलों के निवासी हो, नहीं है। इसलिए मैं उनकी तरफ आकृष्ट हुँ। इनका जीवन अनुशासन प्रियजीवन है। जिसमें अन्य समुदायों की तुलना में लोकतांत्रिक गुणों का अधिक अंश समावेशित हैं।"[43]

आदिवासी समुदायों का अपना इतिहास होता है अपनी परम्पराए और भाषा होती है जिसमे वह अपनी सभ्यताऔ संस्कृति की समावेशी दृष्टि देखते है। जब इसका हनन शुरू हुआ तो इन्होंन जागकर शासन के सामने खडा होना स्वीकारा। रमणिका गुप्ता का मानना है कि ''आदिवासीयों ने दी सर्वप्रथम अंगे्रजों के विरूद्ध राजनीतिक और वर्गीय लड़ाईया लड़ी थी।"[44]

पूंजा भक्त सम्प सभा का विस्तार करता रहा। जगह-जगह युवकों को इस सभा में सम्मिलित होने के प्रेरित करता।मानगढ़ धाम भक्ति कर्म के साथ-साथ राजनैतिक व सैनिक प्रशिक्षण स्थल भी बन गया। सरकारी कर्मचारी सेवानिवृत होकर वहाँ आ जाते। वहाँ के युवकों को प्रशिक्षण देते। सामूहिकता की भावना भरी जाती साथ ही साथ आदिवासी परम्परा की पुरानी युद्ध पद्वघति छापामार युद्ध पद्धति का भी प्रशिक्षण दिया जाता। सैदिग्ध व्यक्ति की पहचान करना सामुहिक व्यवहार में हमलो के तरीके सिखाना जिनमें छापामार, अचानक

आक्रमण, शत्रु से छिपना आदि सिखाया जाता था। दुर्गम व खतरनाक जगहों से कैसे बचना व दुश्मन को फंसाना भी वही सिखाया जाने लगा। मार्ग परिवर्तन कैसे करे, साथियों को एकत्र करना व बिखेरने में कौनसी विधियाँ काम में आती है इत्यादि का प्रशिक्षण वहाँ दिया जाता था।

गोविन्द गुरू आदिवासियों की बुरी दशा के जिम्मेदार सही तरीके से अंगे्रजी सरकार को ही मानते थें। हाँ, यह भी मानते थें कि अंग्रेजी नीतियों को क्रिर्यान्वयन करने में देशी रजवाड़ों का अहम् योगदान है। अतः उनका लक्ष्य देशी रजवाडों को नष्ट करते हुए दिल्ली को फिरंगियों से मुक्त कराना था। जबकि इनका मूल ध्येयतो आदिवासी दुखों को नष्ट करना था। राज पर काबिज होना कभी भी इनके लिए महत्वपूर्ण नहीं रहा। इनकी विचारधारा को समझने के लिए इनके इस गीत को सटीक सबूत के रूप मे देखा जा सकता है जो पूजा भाई के साथ बैठकर आग की आँच से तपनें के उपरान्त निर्मित हुआ।

‘‘झालादे माँय मारी डूंगरी है
छाहादे माँय मारो दीयो है
वेणेश्वर माँय मारो चोपड़ों है
मानगढ़ मारों वेरा हैं
भुरेटिया नी मानू रे।”[45]

निष्कर्वतः यह सकते है कि धूणी तपेतीर उपन्यास में आदिवासी चेतना की पुरजोर पुष्टि होती है। जिससे उनके दैनिक जीवन में हर स्तर पर परिवर्तन आ जाता, सोचन समझने, व कार्य करने की पद्धति ही परिवर्तित हो जाती है। इस शीर्षक पर अलग से एक पुस्तक लिखी जा सकती है।

संदर्भ सूची

1. ऐयेप्पन, ऐ, ट्राईब्स इन दी साउथ, सेमिनार (जसल) अक्टूबर 24, 1960 उद्घत एल. पी. माथुर, गोविन्द गिर व उनका आन्दोलन,पृ0 2
2. माथुर, पी. एल. गोविन्द गिर व उनका आन्दोलन, शब्द महिमा प्रकाशन जयपुर स0 2005, पृ0स0 75
3. वही पृ0 76
4. शाह, मुन्ना धूणी तपे तीर समीक्षा सादित्य सृजन नवम्बर 2013
5. मीणा, हरिराम, धूणी तपेतीर, साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली, स0 2016, पृ0 25
6. मीणा, हरीराम, मानगढ़ घाम, अलखप्रकाशन, जयपुर, स0 2013, पृ0स0 26
7. शाह, मुन्ना, घूणी तपेतीर, समीक्षा, ए साहित्य सृजन, नवम्बर 2013
8. मीणा, हरिराम, घूणी तपेतीर साहित्य उपक्रम समिति , दिल्ली, स0 2016. पृ0 43
9. वही पृ. 44.45
10. वहीए पृ0 205
11. मीणा, हरिराम, मानगढ़ धाम, अलख प्रकाशन ,जयपुर, 2013, पृ0 60
12. मीणा, हरिराम, जयपुर लिटेस्चर फेस्टिवल 2015 में दिया वक्तव्य
13. मीणा, पिंटुकुमार, मानगढ़ आन्दोलन केन्द्रित हिंदी साहित्य ,अलख प्रकाशन, जयपुर, स0 2013 पृ0 57
14. मीणा, हरिराम, धूणी तपे तीर साहित्य उपक्रम समितिए, दिल्ली , सं .2016, पृष्ट सं. 139
15. मीणा, गंगा सहाय , आदिवसी आन्दोलन और हिंदी उपन्यास :अस्मिता और अस्तित्व का संघर्ष , अनन्य प्रकाशन,दिल्ली, सं. 2016 , पृष्ट. 171
16. मीणा, हरिराम, घूणी तपेतीर, साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली, स0 2016, पृ0 154
17. शर्मा,बृजकिशोर, राजस्थान में किसान एवं आदिवासी आन्दोलन, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी जयपुर, स0 2013, पृ0 26

18. वर्मा, धीरेन्द्र वर्मा,हिन्दी साहित्य कोष , ज्ञान मंडल लिमिटेड़, वाराणसी 1

19. वर्धा, हिन्दी शब्द कोश, महात्मागंधी अंतराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय वर्धा,महाराष्ट्र

20. मीणा, हरिराम, घूणी तपेतीर, साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली, स0 2016,पृ0 190

21. वही, पृ0 204

22. वही. पृ0 205

23 वही, पृ0 205

24. कृष्ण, वी एंव भीम सिंह (सम्पावक), आदिवासी विमर्श, स्वराज प्रकाशन दिल्ली, स0 2014, पृ0 80

25. मीणा, हरिराम, घूणी तपेतीर, साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली स0 2016, पृ0

26 वही, पृ0 230

27. वही , पृ024,25

28. वही, पृ0 170

29. वही, पृ0 172

30. वही, पृ0 88

31. वही, पृ0 170

32. मीणा, गंगासहाय, लेख फारवर्ड प्रेस, अपे्रल 15, 2016

33. मीणा, हरिराम, घूणी तपेतीर, साहित्स उपक्रम समिति दिल्ली, स0 2016, पृ0 345

34. मीणा, जगदीश चंद, भील जनजाति का सांस्कृतिक एंव आर्थिक जीवन, हिमांशु प्रकाशन, उदयपुर स0 2003, पृ0 126

35. मीणा, हरिराम,घूणी तपेतीर, साहित्य उपक्रम समिति दिल्ली, स0 2016, पृ0 344

36. वही, पृ0 310

37. वही, 147

38. शर्मा, डी.पी. (सम्पादक), मेवाड़ रियासत एंव जनजातियाँ, प्रताव शोध प्रतिष्ठान उदपुर, स0 2007, पृ0 20

39. मीणा, हरिराम, घूणी तपेतीर, साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली, स0 2016 पृ0 135

40. वही, पृ0 186

41. ए. अनुराधा कवि विजेन्द्र कृत कवि की अतंयात्रा मे आदिवासी प्रसंग स. अक्टुबर 2010-11, पृ0 63

42. मीणा, हरिराम, घूणी तपेतीर, साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली, स0 2016, पृ. 43.44

43. कृष्ण,वी एंव सिंह भीम (सम्पादक), आदिवासी विमर्श, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, स0 2013 , पृ0 82

44. गुप्ता, रमणिका, आदिवासी लेखन: उभरती चेतना, रमाणिक फाडेशन दिल्ली, स0 2011, पृ0 19

45. मीणा, हरिराम, धुणी तपे तीर, साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली, स0 2016, पृ0 308

अध्याय : तृतीय

गोविन्द गुरू, आदिवासी समुदाय एवं मानगढ़ आंदोलन

गोविन्द : गुरू व्यक्तित्व और कार्य

गोविन्द गुरू का जन्म "डूँगरपुर रियासत के बांसिया गांव में सन् 1858 को एक बनजारा परिवार में हुआ।"[1] लोक प्रचलित मान्यतानुसार कहा जाता हैं कि "वहाँ के पुजारी बाबा ने बालक गोविन्द के संदर्भ में महान पुरुष होने की भविष्यवाणी की थी।"[2] गोविन्द गुरू ने औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं की। इस पर डा. एल पी माधुर 'फारन डिपार्टमेट पोलिटिकल इन्टसल एमार्च' का हवाला देते हुए लिखते हैं कि " रामपुर कारागार में प्रस्तुत की गई फाईल की अपील से ज्ञात होता हैं कि 12 नवम्बर 1913 के संदेश में उनके प्रतिनिधि ने उनके हस्ताक्षर किए हैं तथा शेष कागजों में उनके अंगूठे की छाप अंकित हैं।"[3] इससे स्पष्ट होता है कि वह अनपढ़ थे लेकिन " उनकी प्रतिभा और बौद्धिक विकास असाधारण था। वे संस्कारशील व्यक्ति थे भगवद्भक्ति में उनकी अटूट आस्था थी। वे मांस-मदिरा और अन्य मादक पदार्थों से दूर रहते थे। वे गले में रुद्राक्ष की माला धारण करते थे।"[4]

गोविन्द गुरू ने अपने साधारण जीवन को आध्यात्य की ओर लगाने का प्रयत्न किया।इस हेतु उन्होंने बूंदी के दशनामी अखाड़े से संबंध बनाया वहाँ केमुखिया राजगिरी गोसांई से दीक्षा ली। वहाँ के गोसाइयों के नाम भी बताए गए हैं- गिरीनाम, छोटानगर जी, सात्भनगर जी, राजगिर जी। वहाँ से दीक्षा लेने के बाद गोविन्द गुरू भीलों की तरफ ध्यान देना आरंभ करते है।"उन्होंने आदिवासी भील समुदाय व अन्य आदिवासियों की तरफ ध्यान देना आरंभ किया।"[5] " उनका प्रथम शिष्य डूँगरपुर राज्य के सुराता गाँव का निवासी कुरा (कुरिया) था।"[6]

"भीलों में जनजागति लाने हेतु गोविन्द गुरू ने उस इलाके में भ्रमण किया। सिरोही पालनपुर, वागड़ कोथल, और मालवा की यागाएं की। जहाँ पर उन्होंने आदिवासी समुदाय में व्याप्त बुराइयों तथा उनके शोषण को नजदीक से देखा।"[7]

'1880-81 ई. में गोविन्द गुरू दयानंद सरस्वती से उदयपुर में भेटें। उनकी शिक्षा व कार्य से प्रभावित हुए। परिणामस्वरूप स्वदेशी वस्तुओं की तरफ उनका ध्यान बढ़ा, उनका उपयोग करने लगे। दयानंद सरस्वती की प्रेरणा से ही उन्होंने 'सम्पसभा' का गठन किया। जिससे आदिवासी समुदायों में जनजाग्रति लाकर प्रेम एकता और सौहार्द की भावना भरी जा सके।'[8]'इस हेतु गोविन्द गुरू ने अपने गाँव के निकट छावी डूँगरीपर धूणी स्थापित की।'[9] 'अन्य धूनियाँ डूँगरपुर में सुराता, डाडपुरी, बड़ोदर, गुजरात के कम्बाई, वणेश्वर, घोटिया अम्बा, जगमेर, मानगढ़ आदि स्थानों पर बनाई।'[10]

गोविन्द गुरू पर विभिन्न धर्मों व सम्प्रदार्यों का प्रभाव पड़ा। उन्होंने दीक्षित होकर आदिवसी स्थानों का भ्रमण किया। वहाँ के जन जीवन को निकट से देखा।गरीबी और अज्ञानता से भरे जीवन को सुधारने के लिए आदिवासियों में जनजागृति फैलाने का कार्य किया। इस कार्य में विभिन्न सम्प्रदार्यों का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। उनका मन भगवन शिव मैं ज्यादा रमता था।अपने प्रत्येक कार्य को शिव के साथ जोड़ कर देखते थे।

'गोविन्द गुरू शैव मत से भी प्रभावित थे। वे शिक्षावृति को शिव मानते है और स्वयं गले में रूद्राक्ष धारण करते थे।'[11]

"गोविन्द गिर के पंथ के प्रतिमान उस समय में हिन्दू धर्म में प्रचलित अनेक मतों से प्रभावित थे।"[12] 'अनेक हिन्दु जातियाँ हिन्दू धर्म के निकट आचूकी थी, और संस्कृतिकरण की प्रक्रिया में गतिशील थी। उस समय वागड़ के आदिवासी भी इस प्रक्रिया से गुजर रहे थे। गोविन्द गुरू उनको तथा कथित हिन्दू धर्म की संस्कृति में लाकर उनके मनोबल को बढ़ाने

चाहते थे इसलिए उन्होंने अपने पंथ में हिन्दू धर्म के विभिन्न सम्प्रदार्यों व धर्मों के सिदधान्तों व मतों का सम्मिलित किया।'[13]

'उनकापंथ काफी लोकप्रिय हो गया। अनुमान लगाया जाता है कि उनके अनुयायियों की संख्या उस समय में तीन-चार लाख के लगभग थी। अब उन्हे चमत्कारी साधु माना जाने लगा। वह रोगी के शरीर को चिमटा घुमाकर ठीक कर देते है। उन्होंने लकवे से पीड़ित एक स्त्री व एक पुरूष को निरोग कर अपनी चमत्कारि शक्ति का परिचय दिया।'[14] इसलिए शायद गोविन्द गुरू जगह जगह 'जय भोले नाथ' नाम का उच्चारण करते हैं।

'गोविन्द गिर स्वयं को कबीर दास से भी प्रभावित मानते हैं 14 नवम्बर, 1913 को अंग्रेज अधिकारियों को भेजे गए पत्र में उन्होंने कहा कबीरदास ने बताया कि जैसे हम कर्म करेंगे वैसा ही फल हमें प्राप्त होगा। यदि इस जन्म में अच्छे कर्म करेंगे तो उनका फल अगले जन्म में मिलेगा। आज भी इसके अनुयायी अपने भजन-कीर्तन में कबीर दास की वाणी को गाते है।'[15] लेकिन एक विशेष बात यह भी है कि कबीर निर्गुण उपासक थे और वह तो जन्म पुनर्जन्म में विश्वास ही नहीं करते थे।वे एकेश्वरवादी थे।

"भगवान एक है। अलग-अलग लोगउसे अलग-अलग रूप में देखती है। नाम व रूप कुछ भी हो लेकिन सृष्टि को रचने वाला एक ही है। महापुरूषों ने इस भेद को समझा।"[16]

उन्नसवीं सदी में भारत में समाज सुधार के कार्य तेजगति से चल रहे थे। स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा स्थापित 'आर्य समाज' समाजसुधार के साथ-साथ स्वदेशी आंदोलन को भी चला रहे थे। गोविन्द गुरू भी इससे अछूते नहीं रहे। गोविन्द गुरू उदयपुर में स्वामी दयानंद सरस्वती से मिले थे। प्रेमसिंह कांकरिया लिखते है कि "गोविन्द गुरू 1880-81 में उदयपुर में स्वामी दयानंद के सम्पर्क में आए।"[17] गेरूवे वस्त्र धारण करना, धूनियों पर निरन्तर होम करवाना, विधवा विवाह का समर्थन करना, मूर्तिपूजा का विरोध करना, आदि कार्य'आर्य समाज' के कार्यों में मेल खाते है।

आदिवासी समुदाय : अर्थ एवं स्वरूप

भारतीय समाज भिन्न-भिन्न प्रजाति समूहों का संगम रहा है जहाँ पर विदेशी समुदाय समय-समय पर अपना वर्चस्व कायम करने हेतु प्रवेश करते हैं, लेकिन समयान्तराल में ऐसे समूहों की सांस्कृतिक सामाजिक परम्पराएँ भारतीय समाज का हिस्सा बन गयी। इसके पश्चात् भी कुछ मानव समूहों ने अपनी संस्कृति को बाहरी संस्कृति व सभ्यता से बचाए रखा। जिनको सामान्य तौर पर आदिवासी कहा जाता है। वास्तव में आदिवासी ही किसी भी स्थान के जल जंगल व जमीन के असली मालिक है।"वस्तुतः आदिवासी से तात्पर्य उस क्षेत्र विशेष का मूल निवासी होने का घौतक है।"[18]

सयुक्त राष्ट्र संघ ने भी अपने घोषणा पत्र में आदिवासी राष्ट्र को परिभाषित इस प्रकार किया "आदिवासी राष्ट्र का तात्पर्य उन लोगों के वंशजों से हैं, जो किसी देश की वर्तमान भूमि के पूरे या कुछ भाग पर विश्व के अन्य भागों की किसी भिन्न संस्कृति अथवा नस्ल के लोगों द्वारा पराजित कर दिए जाने ...के पहले से ही वहाँ निवास कर रहे थे।"[19]

जगदीश प्रसाद मीणा अपनी पुस्तक –'भील जनजाति का सांस्कतिक एवं आर्थिक जीवन' में लिखते है कि भारत सरकार के जनसंख्या विभाग से इनको आम जनसंख्या में शामिल करने के उद्देश्य से सर्वेक्षण कर वर्गीकरण का कार्य किया।सन् 1981 ई की जनसंख्या रिपोर्ट के अनुसार इन्हें परम्परागत का माप के आधार पर वर्गीकृत किया गया। इस रिपोर्ट को बनाने वाले जनसंख्या आयुक्त श्री जे.एन. बेन्स थे। आदिवासियों को 'वन्य जातियाँ' कहा गया। सन् 1901 ई. की जनसंख्या रिपोर्ट के अनुसार आदिवासी प्रकृतिवादी बना दिए गए और सन् 1921 ई की जनसंख्या रिपोर्ट में इन्हें'पहाड़ी' व वन्य जनजातियाँ बनाया और 1931 ई. की रिपोर्टानुसार आदिवासी 'आदिम जनजाति' थे।

भारत सरकार अधिनियम सन् 1935 ई में जनजाति शब्द में कुछ परिवर्तन करते हुए भारतीय जनसंख्या को 'पिछड़ी जनजातियाँ' कहा गयां 'जनजातियाँ' शब्द सन् 1941 ई की जनसंख्या रिपोर्ट में प्रयुक्त किया गया।'[20]

आदिवासियों को 'आदिवासी' कहा जाए अथवा जनजाति यह एक विवादास्पद प्रश्न है। लेकिन भारतीय संविधान में आदिवासियों के लिए 'जनजाति'शब्द प्रयुक्त किया गया।

संविधान में 'जनजाति' शब्द उन जनसमुदायों के लिए प्रयुक्त किया गया है जिन्हें भारत के राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद 342 के अधीन सन् 1950 ई को अनुसूचित जनजाति के तौर पर निर्दिष्ट किया है कि "राष्ट्रपति सार्वजनिक सूचना द्वारा, जनजातियों, जनजाति समुदायों या जनजातियों के भीतरी समूह परिगठित किए जा सकेंगे,वे सब अनुसूचित जनजाति कहलायेंगे। अतः स्पष्ट है कि समय समय में इनकी संख्या में परिवर्तन होता रहा है।।"[21]

निष्कर्षतः वह सकते है कि आदिवासी भूमि पर आदिमकाल से निवास करने वाले वे लोग है जिनकी सभ्यता और संस्कृति प्रकृति के सहअस्तित्व में विकसित हुई और सामूहिक भाव अपने पारम्परिक रीति-रिवाजों के साथ आंनदमय सुखामय जीवन जीने की कला में विश्वास रखते है।

इस देश के आदिवासियों ने अपने आप को बचाने तथा अपनी सभ्यता एवं संस्कृति को बचाने हेतु संघर्षमय जीवन जीया। यह संघर्ष आर्यों सभ्यता से ब्रिटिश राजनीतियों साथ ही अन्य समुदायों से भी था। प्रकृति पर निर्भर रहने वाला आदिवासी समुदाय 'प्रकृति पूजक' कहलाया। भूमि से आदिकाल से जूड़ा होने के कारण 'भूमिपुत्र' कहलाया। यह भूमिपुत्र, प्रकृतिपूजक, भारत के विभिन्न राज्यों में निवास कर रहा है। जिन्हें भिन्न-भिन्न नामों से जानते है। यथा- मुंडा, संथाल, गोंड, भील, शाबर, किरात, कील, मित्रो, मीणा, खडिया, गरासिया, डामोर, नाग आदि। इनकी अपनी अलग-अलग संस्कृति है, लेकिन मूल में एक ही भाव है प्रकृति के साथ गहरा तादाम्य। राजस्थान प्रदेश के दक्षिण अंचल में अधिकांश रूप से भील, मीणा, गरासिया व डामोर जनजातियाँ निवास करती है।

आदिवासी समुदाय की खुली संस्कृति है उनकी प्रथाएँ, रीति रीवाज और मेले त्यौहार। लोक कथाएँ इनके जीवन का अभिन्न हिस्सा है। जिसके माध्यम से ये समुदाय अपने अतीत व वर्तमान के मध्य सामजस्य स्थापित करते है। लोक कथाओं का आरंभ पारम्परिक गीतों के माध्यम से करते है। हरीराम मीणा ने 'धूणी तथे तीर' उपन्यास में आदिवासी समुदाय में प्रचलित लोक कथाओं को उचित जगह दी है। आमलिया गाँव धूणी पर आदिवासियों द्वारा अपनी कथा आरंभ करवाई है जिसके प्रारंभ में लोक गीत 'हीड़ों' को उदृधत किया। इस लोक कथा के माध्यम से आदिवासी समुदाय की अप्रत्यक्ष प्रेमभरी भावनाएँ उदृधत की। नंदू और कमली के पवित्र प्रेम को इस कहानी के माध्यम में सुदृढ़ता प्रदान की है। जो की आदिवासी समुदाय की जड़ है। जो इनके पारिवारिक परम्परा की गत्यातमक प्रणिती है। मनमुताबिक प्रेम और विवाह की परम्पराएँ 'भगोरिया' और 'घोटुल' अपने आप में अनूठी परम्पराएँ है। जो आदिवासी संस्कृति का उदात पक्ष है। अपने आप को सभ्य कहलाने वाले समुदायों में नारी मुक्ति के नाम पर यौन विकृतियाँ ही उच्छृखलता में दिखाई देती है जबकि आदिवासी समुदाय में नारी को प्राचीन काल से ही स्वतन्त्रता थी। स्त्री पुरूष का परस्पर प्रेम भाव परिलक्षित होता है। 'जिसे यूनान के महान दार्शनिक 'प्लेटो' के 'दार्शनिक राजा' और उत्तम शासन सिधांत से जुड़ा हुआ पायेंगे।'[22]

आदिवासी समुदाय सामूहिक न्यायिक प्रणाली में विश्वास करते है।'उनके पंचायत का मुखिया, जिसे दक्षिणी राजस्थान के आदिवासी 'गमेती' कहते हैं, कहीं पटेल कहते है,पंचायत के अन्य सदस्यों से विचार-विमर्श कर न्यायिक कार्य संपन्न करते है।'[23]

'आदिवासी समुदाय कच्ची बिखरी या छितरी व्यवस्था में बनी झोंपड़ियों में निवास करते हैं जिनको पाल कहा जाता है कही पर इन्हें अन्य नामों से भी जाना जाता है। यथा 'टापरी', थूर आदि। प्रसिद्ध नृतत्वशास्त्री वेरियन एल्विन लिखते हैं कि 'व्यापक स्तर पर देश के आदिवासियों के निवास स्थलों को देखने से स्पष्ट होता है कि आदिवासियों का बहुत बड़ा

हिस्सा छितरायी हुई बस्तियों में निवास करता है, जिन्हे भील बस्तियाँ टापरा के नाम से पुकारती है जबकि मेर और मीणा अपनी झोंपड़ियों का मादा नाम से अभिहित करते है।'[24]

मानगढ़ आन्दोलन : क्रमिक विकास

गोविन्द गुरू आदिवासियों के दुःख दर्द को देख रहे थे। उनका आदिवासियों व आदिवासियों का गोविन्द गुरू के प्रति आत्मीय भाव संबंध थे। गोविन्द गुरू आदिवासियों में चेतना जागृत करना चाहते है। इसलिए सर्वप्रथम सुरांता गाँ में एक बड़ा सम्मेलन करवायां जिसमें बड़ी संख्या में आदिवासियों ने उपस्थिति दर्ज करवाई। इसी सम्मेलन में 'संपा सभा' की स्थाई घोषणा की गई।

> **"गोविन्द गुरू के नेतृत्व में आदिवासियों का पहला बड़ा सम्मेलन सुराता गाँव में आयोजित किया। ...उस सम्मेलन में संपासभा के गठन की बाकायदा घोषणा की गयी।"[25]**

सन् 1898 ई में एक भंयकर अकाल पड़ा। इस अकाल काल में लोगों की हालत खसता हो गयी। इस अकाल को आज भी लोगअपनी स्थनीय भाषा में 'छप्पन्या काल' कहकर याद करते रहते है। क्योंकि उस समय सवत् 1956 विक्रमी थी। इस दौरान मनुष्यों के लिए तो दूर मवेशियों तक को खाने के लाले पड़ गए। दुःख और भूख काखुला तांडव था। हर जगहमरने वालों की संख्या निरन्तर आरोही क्रम में बढ़ रही थी। आदिवासी क्षेत्रों में यह अकाल और ज्यादा विकराल रूप में प्रस्तुत हुआ। हैजा की महामारी फैली। यहाँ एक-दूसरे को सहयोग की महत्ती आवश्यकता थी। अकाल व महामारी से उत्पन्न समस्या को ध्यान में रखते हुए गोविन्द गुरू ने आदिवासियों दूसरा बड़ा सम्मेलन बांसिया ग्राम में आयोजित करवाया। इस सम्मेलन का इस विशेष उद्देश्य को ध्यान में रखकर करवाया कि सभ्यसभा के माध्यम से लोगों सहायता पहुँचाई जासके।

गुरू ने आदिवासियों का दूसरा बड़ा सम्मेलन बासिया में करवाया। जिसे छाणी मगरी भी कहा जाता था।''[26]

बागड़ प्रदेश में गठित सभ्यसभा के परिणाम स्वरूप गोविन्द गुरू की लोकप्रियता में इजाफा होना आरंभ होता है। बच्चे, स्त्री-पुरूष व्यस्क एवं वृदध सभी आयुवर्ग के लोगों का गोविन्द गुरू के प्रति आदर भाव दिनों दिन बढ़ता गया। इस कारण आदिवासी लोग अभिवादन में 'जय गुरू महाराज' शब्द प्रयुक्त करने लगे।

संपा सभा के गठन के बाद बागड़ के सम्पूर्ण आदिवासी अंचल में गोविन्द गुरू की लोकप्रियता में जबरदस्त रूप से फैल चुकी थी। ...'जय गुरूदेव' एक आत्मीय अभिवादन से संबोधन से बढ़कर आदिवासी एकता का संदेश देने वाला नारा बन चूका था।''[27]

गोविन्द गुरू अपने मत को आदिवासियों के वर्चस्वशाली स्वरूप में देखना चाहते थे।'मार्गशीर्ष शुक्ल पूर्णिमा के दिन मानगढ़ पहाड़ी पर गोविन्द गुरू अपनी धूणी स्थापित करते हैं।[28] जहाँ प्रतिवर्ष माघपूर्णिमा को मेला भरता है। हजारों की संख्या में आदिवासी एकत्र होते है। गोविन्द गुरू उनको आध्यात्मिक ,सामाजिक,नैतिक और चारित्रिक सुधार संबंधी उपदेश देते थे।

गोविन्द गिर के कार्यों से दिन-बे-दिन लोग जुड़ते गये। वहाँ के आस-पास के शासक चिंतित होने लगे। रामपुर का शासक भी चिंतित हुआ। उसने रेवाकांथा के पोलिटिकल एजेन्ट से प्रार्थना की कि गोविन्द गिर के कार्यों को नजर में लेवे।

उसके कार्यों को निगरानी में रखते हुए उसे गिरफ्तार करें। रायपुर शासक की प्रार्थना पर अंग्रेजी सरकार दक्षिणी राजस्थान के आदिवासी इलाकों पर नजर रखने लगी। पंचमहल

जिलाधीश से इस संबंध में चर्चा की। जिस पर पंचमहल जिलाधीश शांति व्यवस्था हेतु गश्त लगवाने का मानस बनाते है। उपजिलाधीश को आदेश जारी करते है कि पंचमहल व गोविन्द गुरू के कार्यों की पूरी निगरानी रखे।

'एजेन्ट टू गर्वनर ने 8 नवम्बर, 1913 ई को भीलो के मानगढ़ पर एकत्र होने की सूचना भारत सरकार को दी। 31 अक्टूबर, 1913 से इस स्थल पर हो रही विभिन्न घटनाओं के संबंध में भारत सरकार का जानकारी देते हुए लिखा कि रेवाकांथा के पोलिटिकल एजेन्ट द्वारा 'मेवाड़ भील कोर की'सहायता हेतु मांग पत्र भेजा है। परिणाम में मेवाड भील कोर्प्स की दो कम्पनियां भेजी गयी। नसीराबाद 'नेटिव इन्फेन्ट्री' को भी भेजा गया। साथ ही सर्तकता बरतने की सलाह लिखी। इस पर भारत सरकार ने दक्षिणी राजस्थान के तत्कालीन पोलिटिकल एजेन्ट आर.ई. हेमिल्टन को मानगढ़ की स्थिति का मौका मुआना कर वहाँ के लोगों से आपसी सौहार्द्रपूर्ण रवैया अपनाते हुए बातचीत हेतु राजी करना और आवश्यकतानुसार उचित कार्यवाही करने हेतु भेजा। गोविन्द गुरू के कार्यों के संदर्भ में उठाये कदमों की जानकारी भारत सरकार को मुम्बई सरकार ने 5नवम्बर दी। जिसमें बताया गया कि स्थिति नियत्रंण से परे होती जा रही है। 8 नवम्बर को कमांडेड जे.पी. रूटोक्ले भी अपनी दो कम्पनियों के साथ वहाँ पहुँच गया। पृथ्वी सिंह, गढ़ी राव साहब भी लगभग उसी समय वहाँ पहुँच गए।'[29]

'हेमिल्टन व स्टोक्ले ने 12 नवम्बर को गोविन्द गुरू से मिलने की योजना पर चर्चा करते है। इस योजना में वहाँ के गमेतियों से सलाह-मशविरा की गयी और उन्ही के माध्यम से गोविन्द गुरू से निशस्त्र होकर मिले। जहाँ गोविन्द गुरू के प्रतिनिधियों ने उनको गोविन्द गुरू की शिक्षाओं व आदिवासियों के हितो की संदर्भित मांगो से अवगत कराया। जिनमें गोविन्द गुरू को एक सज्जन गृहरथ साधुमय जीवन यापन करने वाला व्यक्ति बताया और अपने जीवन यापन हेतु शिक्षा वृति व भिक्षाटन करते हैं,जानकारी दी।"[30]

'अंग्रेजी सरकार मानगढ़ से भीलों को हटाना चाहतीथी। इस हेतु वे कटिबदध थे। बड़ौदा व अहमदाबाद से सैनिक टुकडियाँ बुलाई गई। 13 नवम्बर को बड़ोदा से 104 राइफल्स व अहदाबाद से सातवींजाट रेजिमेन्ट अपनी मशीनगन समेत मानगढ़ पहाड़ी पर मौर्चा संभालने पहुँची।'[31]

मानगढ़ पर एकत्र व्यक्तियों की संख्या कितनी थी। यह आजतक मतभेद का विषय है। विद्वानों ने अपने-अपने शोधों से अनुमान लगाने का प्रयास किया।'अंगे्रजी सरकार अपने आकड़ों मे मानगढ़ पर 13 नवम्बर को तीन हजार आदिवासियों के एकत्र होने की पुष्टि करती है। वही हिम्मत लाल त्रिवेदी यहीं आकडे दो लाख तक पहुँचाते हैं, ज्योतिपूंज हजारों की संख्या में भीलों के एकत्र होने की बात करते हैं। भगवती लाल जैन लाखों नर-नारियों के एकत्र होने की पुष्टि करते है।'[32]मानगढ़ पहाड़ी पर 4000भील एकत्र हुए जिन्हें तितर.बितर करने के लिए अंग्रेजों को पर्याप्त प्रयास करना पड़ा।"[33] वास्तव में मानगढ़ पर कितने आदिवासी एकत्र थे, अनिर्णित है जो भी हो इतना तो अवश्य कहा जा सकता है 'जिस प्रकार से अंगे्रजी सरकार सेना की टुकड़ियां बुला रही उसके अनुसार तो भीलों की संख्या बल काफी रहा होगा।'[34]

आदिवासियों के इस तरह एकत्र होना गोविन्द गुरू धार्मिक उद्देश्य से जोडते हैं वहीं अंग्रेजी अधिकार भीलों का इस प्रकार एक जगह पर एकत्र होने को राजनीतिक साजिश के तौर पर देखती है।

'मानगढ़ पहुँचने वाले अंग्रेज अधिकारियों को भारत सरकार का आदेश मिला कि मानगढ़ पर एकत्र भीलों को समझाया जाए। उनसे मिलकर बातचीत की जाए। मामले को शांत किया जाए। लेकिन बंबई सरकार के मध्यस्तापर जिसमें उसकी चतुराई और होशियारी परिलक्षित होती है, मानगढ़ पर एकत्र भीड़ का हटाने व भानगढ़ पहाड़ी खाली करवाने हेतु

बल प्रयोग की अनुमति दे दी जाती है। ताकि सैनिक कार्यवाही कर शांतिव्यवस्था बनाई जा सकी।'[35]

गोविन्द गुरू आदिवासियों का विनाश नहीं देखना चाहते थे। साथ ही साथ गोविन्द गुरू शांतिप्रिय व्यक्ति थे। आध्यात्म में मग्न रहते थे। धार्मिक प्रवृति के थे। इसलिए विनयपूर्ण भाषा में अंग्रेजों से अपने दुःख दर्दों को बताते। देशी राजाओ की करतुतों से अवगत करवाते। आदिवासियों का वास्तविक जीवन क्या हैं? पर टिप्पणियाँ देते। फिर भी अंग्रेजी सरकार उनकी प्रार्थना अस्वीकार करती हैं आखिर ऐसा क्यों? कारण का स्पष्टीकरण देशी राजाओं-महाराजाओं की अपनी मनोदशा थी। वे नहीं चाहते थे कि गोविन्द गुरू की लोकप्रियता व ख्याति बढ़े। आदिवासी संगठन व संस्कारित हो समझदार बने। उनकी इच्छा थी जल्द से जल्द गोविन्द गुरू की गिरफ्तार कर लिया जाए। आदिवासियों को उनके हाल पर छोड़ दिया जाए। ताकि उन्हें मशीनों से डरा-धमकाकर मनमानी श्रम ली जा सके।

"बांसवाड़ा, डूँगरपुर, सून्थ , ईडर के शासक और उसके अधीनस्थ जागीदार इसबात को लेकर बैचन थे कि मानगढ़ पर हो चुकी आदिवासियों की किलाबंदी को तोड़ने में अंग्रेज अधिकारी देरी क्यों कर रहे हैं। आदिवासियों के दमन के लिए ये सामंत उन अधिकारियों को बार-बार निवेदन कर रहे थे।"[36]

देशी रजवाड़े आदिवासी विद्रोह से भयभीत थे। इस संदर्भ में उन्होंने अंग्रेजी सरकार से सहायता हेतु प्रार्थना की। अंग्रेजी सरकार की अपनी नियत थी। वह हर तरह से भारत के प्रत्येक भू-भाग पर अपना प्रभूत्व कायम करना चाहती थी। इसलिए अंग्रेजी सरकार ने देशी राजा महाराजाओ की प्रार्थनाएं स्वीकार की। इस कार्य में गतिशीलता तब आती है जबमानगढ़ पहाड़ी की तलाशी लेकर आवश्यक सुचना एकत्र करने का आदेश दिया जाता है। इस प्रकार मिली सूचनाओं के आधार पर मानगढ़ पर कार्यवाही आवश्यक लगती है तब

एक योजना निर्मित की जाती है जिसके निर्माता नार्थन डिवीजन के कमिश्नर थे। उन्होंने अपनी योजना के पूर्व रूप देने हेतु चार्ट तैयार किया। जिसमें 'मानगढ़ आपरेशन'हेतु आदम्बरा गाँव का चयन किया जाता है। अब आदम्बरा में फौजी पड़ाव पड़ने आरंभ हुए। कई कमाण्डरों का कर्नलों का जमवाड़ा आरंभ होता है। मेजर वेली के नेतृत्व में सैनिक कार्यवाही की जानी थी। मेवाड़ भील कौर, राजपूत रेजिमेन्ट, व कम्पनी रजिमेन्ट के सैनिक अपने मुखिया के निर्देशन में अपना बल दिखाने हेतु एकत्र हुए।

आदम्बरा गाँव में 'मानगढ़ ऑपरेशन' पर गरमागरम चर्चा हुई। इस चर्चा के उपरान्त कमिश्नर ने अपना मत प्रकट किया। जो गोविन्द गुरू व पूंजाधीरा को गिरफ्तार करने से संबंधित था।

"17नवम्बर को फौजी कार्यवाही दवारा मानगढ़ खाली करवा लिया जावे और गोविन्द गिरी व पूंजाधीरा का गिरफ्तार कर उसके सम्मुख प्रस्तुत किया जावे।"[37]

इस प्रकार '1913 ई को 6 से 10 नवम्बर तक विभिन्न रजिमेन्टो की सेनाएँ जिनमें बेलेजली रायफल्स की एक कम्पनी, सातवी रेजीमेन्ट की एक कम्पनी और मेवाड़ भील कोर की दो कम्पनियाँ, मानगढ़ पहाड़ी पर एकत्र हो रहे आदिवासियों को कुचलने पहुँची।'[38]

'अंग्रेजी सरकार मानगढ़ पर एकत्र आदिवासियों को छिनभिन कर अपना मकसद पूरा करना चाहती थी। अपने मकसद की पूति। हेतू आम्बादरा गाँव में फौजी पड़ाव डाला। जहाँ से गोविन्द गुरू से समझौता वर्ता भी आसानी से की जा सकती थी साथ ही आक्रमण भी। गोविन्द गुरू अंहिसा प्रिय पवित्र थे। इसलिए सबसे पहले शांति वार्ता का मार्ग अपनाया और अपना त्रिसदस्यीय प्रतिनिधि मंडल अंग्रेजी सरकार के फौजी असफरों से वार्ता करने हेतु वहाँ भेजा।'गोविन्द गुरू ने अंग्रेजी फौजी असफरो से समझौता-वार्ता हेतु अपने प्रिय और सबसे

विश्वसनीय साथी-शिष्य पूंजाधीरा से पत्र लिखवाया और तीन सदस्यीय प्रतिनिधि मंडल को समझाकर पत्र सहित आदम्बरा रवाना किया।'[39]

गोविन्द गुरू ने अपने धूणीधामों के क्रियाकलापों व अपनी विवशताओं से अंग्रेजी सरकार के अफसरों को अवगत कराया। बताया गया कि वह किसी प्रकार का राज्य करना नहीं चाहते है वह तो केवल झूठ, मक्कार-नशा सामाजिक बुराइयों से बचने की शिक्षा देता है। धर्म के मार्ग पर चलने की शिक्षा देता है। लेकिन मेरे प्रति लोगों में गलत सूचना फैलायी गयी जिसके परिणामस्वरूप डूँगरपुर रियासत ने मुझे गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया। मेरे धूणी स्थलों के अपवित्र किया गया। मेरे पर तरह-तरह के जुल्में ढाये गये। इसलिए मैं अपने आप को बचाने के लिए भाग दौड़कर इस मानगढ पहाड़ी पर आया हूँ।

" मैं तो भगवान में विश्वास करता हूँ। उनका ध्यान करता हूँ। आप के प्रति सम्मान की भावना प्रकट करता हूँ। मैं आप से प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरे दुःखों को समझे और उन्हें दूर करने का विचार करें। मैं मेरे निर्धन आदिवासी शिष्यों के साथ भगवान का भजन कर रहा हूँ। मेरे शिष्य आदिवासी जन है जो भोले-भाले कृषि कर्म पर निर्भर रहकर जीवन यापन कर रहें है। प्रकृति से अपना भरण-पोषण प्राप्त करते हैं।"[40]

'गोविन्द गुरू द्वारा भेजा प्रतिनिधि मनुष्य 12 नवम्बर को आम्बादरा गाँव में पड़ाव डाले अंग्रेजी सरकार के अफसरों से मिला। सरकारी अफसरो से पत्र पढ़कर व प्रतिनिधि मंडल की बात सुनकर गोविन्द गुरू के कार्यों के प्रति संवेदनशीलता प्रकट की। लेकिन उन्हें सशस्त्र आदिवासियों का एक पहाड़ी पर एक साथ एकत्र होना उचित नहीं लगा। इसलिए इस घटना को उन्होंने राजद्रोही की श्रेणी में रखा। समझौता वार्ता पर कहा कि सर्वप्रथम मानगढ़ खाली करे उसके उपरान्त ही गोविन्द गुरू की मांग-प्रश्नों पर विचार किया जाएगा।'[41] साथ ही साथ यह भी कहा कि आप के द्वारा किए प्रयास सदकर्मों की श्रेणी में हैं। इसलिए हम प्रत्येक

राज्य को गलत हरकत न करने का आदेश दे देंगे लेकिन आप लोगों का हथियार सहित एकत्र होना सहन नहीं कर सकते। आप लोगों को सचेत किया जाता है कल दोपहर तक आप लोग मानगढ़ पहाड़ी खाली कर दे। हम अपनी सेना मानगढ़ पहाड़ी पर भेज रहे हैं। यदि आप में से किसी ने पहाड़ी पर सेना का सामाना किया तो उसे मार दिए जाएगा।

समझौता वार्ताअसफल रही, फिर भी दलपतराय महेता ने एक आशा जगाने का प्रयास किया। दलपतराय मेहता चाहते थे कि डूँगरपूर महारावल से इस प्रसंग के संदर्भ में बात की जाये। यहाँ मेहता जी अपनी इज्जत बढ़ाने के हिसाब के यह बात करते है। गोविन्द गुरू की मार्फत आदिवासियों में अपनी इज्जत बनाये रखना चाहते थे। ये मेहता भोले-भोले साधु को बहुत सम्मान देकर आदिवासियों पर अप्रत्यक्ष शोषण थोपना चाहता था। मेहता की बातों से जाहिर होता है कि वह आदिवासियों व डूँगरपूर महारावल दोनों पक्षों से अपना हित साधना चाहता है। लेकिन गोविन्द गुरू की सुझबूझ में जनजागृति कार्यक्रमो से आदिवासियों में काफी हद तक चेतना का प्रादुर्भाव हो चुका था। इसलिए कुरिया यह कहकर विरोध करता है कि

"फौज निकट आ चूकी है और मेहता जी महारावल की मध्यस्ता से मामला निपटाना चाहते है जबकि महारावल की अंग्रेजी सरकार के समझ कुछ भी नहीं चलती हैं।"[42]

गोविन्द गुरू आदिवासियों को उनके हक दिलवाना चाहते थे। इस संदर्भ में अंग्रेज अधिकारियों को बार विनती करते। शांतिपूर्ण तरीका खोजना चाहते ताकि खून-खराबा हुए बगैर आदिवासियोंका कुछ भला हो सके। 14 नवम्बर को एक पत्र यय संदेश अंग्रेजों के पास पुनः प्रेषित किया। जिसकी भाषा पहले की अपेक्षा अधिक लचीली थी। आदिवासियों के दुःखों की पुकार थी। फिर भी अंग्रेजी हुकूमत गोविन्द गुरू की एक भी नहीं सूनती है। केवल एक ही तरह केशब्दों का प्रयोग करती है कि मानगढ़ खाली करने के बाद ही आगे सोचा जाएगा। लेकिन आदिवासी लोग भी अपनी जायज मांगों को लेकर मानगढ़ पर डटे रहे। आखिर में ब्रिटिनी हुकूमत ने मानगढ़ खाली कराने की कार्यवाही आरंभ कर दी। एक सोची

समझी रणनीति तैयार की थी।'सुबह छ: बने आक्रमण करने की योजना बनायी। रातोंरात मानगढ़ पहाड़ी को घेरा गया। सेना की चक्रव्यूह रचना की गई। इस योजना का निर्माता मेजर वेली था। निकटवर्ती राज्यों की सेना को बुलाया गया और नियत स्थानों पर भेजा गया। जिसमें पंचमहल, बारिया, बांमवाड़ा, मेवाड़ आदि राज्यों की सेना शामिल पंचमहल के जिला पुलिस अधीक्षक 40 सशस्त्र जवानों के साथ मानगढ़ के नीचे दक्षिण-पश्चिम घाटी में, बारिया के ठाकुर के नेतृत्व में उसी के घुड़सवार मानगढ़ की पूर्व घाटी में, ... बांसवाड़ा राज्य के 100 घुड़सवार मानगढ़ पहाड़ी के पूर्व-दक्षिण समतल भू-भाग पर जाट रेजिमेन्ट व 9वी रेजिमेन्ट के सैनिकों को दूसरी पक्ति में खड़ा किया।'[43] अंग्रेजी सैनिक व अधीनस्थ राज्यों के सैनिक 7 नवम्बर को अपने गत्तव्य की और प्रस्थान करते है। स्टाँकले अपनी सैनिक टुकड़ी 'भील कार्प्स'के साथ सुबह जल्दी ही मानगढ़ पहाड़ी पर पहुँच गया। जिसके साथ 104 राइफल्स व एक मशीनगन थी। जिसकी कमान कैप्टीन पीटरसन संभाल रहा था। प्रभात को कैप्टीन स्टोकले चुपचाप मानगढ़ पहाड़ी के दक्षिणी-पूर्वी तंग रास्ते से चढ़ा। पीटरसन अपनी टुकड़ी के साथ मानगढ़ पहाड़ी के मिलन स्थल की ओर बढ़ा आदिवासी इस भ्रम में थे कि अंगे्रजी सरकार डरे हुए हैं, समझौता कर लेगे।मानगढ की इस प्रकार हुई घेराबंदी को गोविन्द गुरू को खबर तक नहीं थी। सुबह के समय लोग धूणी पर हवन की आशा बंधाये अपने-अपने नित्यकर्मों से निरत हो रहे थे। आदिवासी अंग्रेजी फौज के बारे सोचे उसके पहले ही गोलियों की बोछार शुरू हो गयी दक्षिण दिशा में बांधी सुरक्षा दीवार को तोड़ दिया गया। मेले में उपस्थित लोगों में भगदड़ मंच गयी। बुढढे, बच्चे, स्त्री और गुरू गोविन्द स्वयं इस हमले से सकते में आ गये। एकत्र लोग कुछ सोचे समझे इससे पहले ही तड़ातड़ गोलियां बरसने लगी। सीधे-साधे भक्त गोविन्द गुरू को अंग्रेजी हुकूमत की ओछी हरकत पर क्रोध आया ओर बोल पड़े-

"मानगढ़ मारी धूणी हैं, भूरेटिया

नी मानू रे, नी मानू रे।''[44]

'मानगढ़ पहाड़ी की घटना का दुःखद अंत हुआ। इस हत्याकांड में कितने लोग मारे गए आज तक विवादित है। विवाद रहित होता भी कैसे और क्यों? इसका सीधा सा उत्तर है कि इतिहास हमेशा ही सत्ताधारियों द्वारा अथवा उनके पक्ष में लिखा जाता है। चाहे वास्तविकता जो भी है।'हमारी तस्वीर दृश्य विधान पूर्व से नियत कर दी जाती। विभिन्न रेखिए आयामों का चयन कर लिया। यह अचानक से नहीं हुआ बल्कि एक विशेष दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर उन्हीं तथ्यों का चयन और लेखांकन किया गया जो उनके दृष्टिकोण का समर्थन करते थे और जिस दृष्टिकोण को आगामी पीढ़ी के लिए छोड़ जाना चाहते थे।'[45]

इसलिए इतिहास के पुनर्लेखन की आवश्यकता है। अंग्रेज अधिकारियों के अनुसार मानगढ़ हत्याकांड में कुछ व्यक्ति घायल हुए और आठ व्यक्ति मारे गए।'[46] सुमित सरकार के अनुसार "मरने वालो की संख्या बारह थी।"[47]रमणिका गुप्ता लिखती है।मानगढ़ हत्याकांड इतिहास का अदृश्य पृ0 है जिसमें 1500 आदिवासियों को एक ही बार में गोलियों से भून दिया गया।'[48] हरिराम मीणा का कथन है-

मैनें सबसे अधिक आधिकारिक प्रमाण यह माना कि अंग्रेजी फौजें रवाना हुई वे कितना गोला बारूद लेकर मा नगढ़ ओपरेशन के लिए चली थी और कितना वापस जमा कराया। करीब चालीस प्रतिशत गोला बारूद वापस जमा कराया और साठ प्रतिशत आदिवसियों पर खर्च हुआ मानगढ़ पर जितने व्यक्ति मारे गये उतने ही घायल हुए।निष्कर्षत: कुल मृतकों की संख्या करीब डेढ़ हजार बैठती है।'[49]

इस तरह आंकड़ों में आदिवासियों की उपस्थित भी उलझी हुई है अंग्रेजी सरकार 4 हजार आदिवासियों के एकत्र होने की बात कहती हैं, हिम्मत लाल त्रिवेदी आदिवासियों की संख्या को तकरीबन 2 लाख तक पहुँचाते हैं, और ज्योति पुंज हजारों आदिवासियों के एकत्र होने की बात करते है।'[50]'सुमित सरकार यही संख्या '4 हजार पर लाकर छोड़ते हैं।'[51] निष्कर्ष

में वह सकते है कि एकत्र आदिवासियों की संख्या 4 हजार से 5 हजार के मध्य रही होगी जबकि मरने वालों की संख्या में हरिराम मीणा व रमणिका गुप्ता के आंकड़ो से सहमत हुआ जा सकता है। हाँ कम नही ज्यादा जरूर हो सकते है।

अब प्रश्न यह उठता है कि अंग्रेजी सरकार ने इतनी तत्परता से सैनिक कार्यवाही क्यों की? जबकि ईस्ट इंडिया कम्पनी की देशी राज्यों के साथ हुई कुछ संधियों के तहत वहाँ के शासन प्रमुखों को यह आश्वासन दिया गया था कि ब्रिटानी हुकूमत उनके आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगी। समय बदलता गया अंग्रेजी सरकार के पोलिटिकल विभाग के बड़े अधिकारियों ने इस प्रकार दिये आवश्वासनों की पालना नहीं की। किसी राज्य के शासक, सामंत और प्रजा के मध्य किसी प्रकार का टकराव हो जाये तो अंग्रेजी यह करकर उनके मामलों में हस्तक्षेप करती थी कि हम सार्वभौमिक शांति बनाये रखना चाहते हैं। जिसमें उन्हीं के खर्च पर सैनिक सहायता देती थी और राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक व सामरिक मामलों को प्रभावित करती थी।'गोविन्द गुरू की आदिवासियों में बढ़ती लोकप्रियता को वागड़ व समीपवर्ती इलाके के शासकों ने अपनी सत्ता के विरूद्ध चुनौति माना और अंग्रेजी सरकार से प्रार्थना की। जिस पर अंग्रेजी सरकार ने उन्हें सहायता प्रदान की।'[52]'वागड़ में शांति व समृद्धि के इस काल में परिस्थितियों में सहसा गंभीर परिवर्तन होता है तो विपति काल में परिस्थितियाँ और भी गंभीर हो सकती है। ऐसी परिस्थितियों में आदिवासियों का विद्रोह व्यापक रूप ले लेगा। जिससे निपटना खांडे की धार पर चलने जैसा होगा।'[53]

'2 नवम्बर, 1913 को हेमिल्टन ने मेवाड़ के रजिमेन्ट को पत्र लिखा कि मानगढ़ घेरे से कुछ समय पूर्व ढांढला में काम कर रहे एक इसाई मिशनरी के एक सदस्य ने अवगत कराया कि गोविन्द गुरू के आंदोलन की जड़ो में विद्रोही भावना पनप रही हैं और दिवाली पर विद्रोह करने संभावना है। इस से यह स्पष्ट होता हैं कि आदिवासी प्रदेशों में काम करने वाले इसाई धर्म प्रचारक चिंतित थे कि गोविन्द गुरू की लोकप्रियता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है।

जिससे उन्हें अपने इसाई धर्म के प्रचार करने में संकट का सामना करना पड़ सकता है।'54 'राजा व सामन्त भी अपना धैर्य खोते जा रहे थे आदिवासी विद्रोह को कुचलने अंग्रेजी अधिकारियों के कान भरने तेज कर दिए।'[55] डूँगरपूर महारावत्न को सबसे अधिक चिंता थी। इसलिए अंगे्रजों से कहते है।

"आप कुछ प्रभावी कदम उठावें वरन ये विद्रोही यहाँ के

अलावा मेवाड़ व ईडर को भी कष्ट देंगे।''56

इतना सब कुछ हो जाने के बाद भी हम यह नहीं कह सकते थे कि मानगढ़ हत्याकांड के पिछे वहाँ के राजाओं, सामन्तों-जागीदारों का ही हित और हाथ था। अंग्रेजी सरकार स्वयं भारत के प्रत्येक भू-भाग पर अपना पूर्ण नियंत्रण स्थापित करना चाहती थी। इसलिए उसने 'जंगलात विभाग और आबकारी विभाग' खोलकर नई नितियाँ लागू की। जिससे ये केन प्रकारेण भारतीय जनमानस पर नियंत्रण स्थापित किया जा सके। हाँ, स्थानीय शासकों का नीति स्वार्थ अवश्य था। लेकिन मुख्य रूप से अंग्रेजी सरकार जिम्मेदार थी। जिसका मुख्य उद्देश्य भारत की प्रकृति का दोहन व जनता का शोषण कर भारत को आर्थिक रूप, सामाजिक, राजनैतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक रूप से पंगु बनाना था।

मानगढ़ आन्दोलन कुचल दिया गया। लेकिन उसने दूरगामी परिणाम छोड़े।मनगढ़ की पहाड़ी आदिवासियों के लिए प्रेरणा का स्त्रोत बन गयी।वागड़ के आदिवासियों का बलिदान व्यर्थ नहीं किया।गोविन्द गुरु को गिरफ्तार किया गया। विभिन्न मुकदमें दर्ज किए गए। फिर भी जनता में उनकी लोकप्रियता व उनके द्वारा किए गए जनहितैषी कार्यों को ध्यान में रखते हुए उनकी सजा को कम करते हुए उन्हें सशर्त छोड़ा गया।लेकिन उन पर आदिवासियों के क्षेत्रों में यथा डूँगरपुर, बांसवाड़ा, सूंथ, कुशलगढ़, ईडर आदि में आने पर प्रतिबंध लगा दिया।'[57]

इस घटना के बाद 'गोविन्द गुरू द्वारा रखी गई मांगों को अंग्रेजी सरकार ने मानकर आंशिक तौर पर मेवाड़ सहित आदिवासी इलाकों में लागू कर दी।'[58]

'मानगढ़ पहाड़ी की घटना की जाँच परख के तदुपरान्त राजस्थान सरकार ने भारत सरकार को भानगढ़ धाम के विकास बाबत प्रस्ताव भेजे। भारत सरकार छानबीन कर मानगढ़ धाम के विकास हेतु 2 अगस्त, 2002 को 2 करोड़ 23 लाख रूपये की राशी स्वीकृत की और सैधांतिक स्तर पर यह घोषणा की कि 'जलिया वाला हत्याकांड' अमृतसर से छः वर्ष पहले राजस्थान के दक्षिणी पूर्वी अंचल में अवस्थित बांसवाड़ा जिले की मानगढ़ पहाड़ी पर घटित हो चूका।जो भारतीय इतिहास का 'पहला जलियावाला' हत्याकांड था। जिसमे जलियावाला हत्याकांड (अमृतसर) के मुकाबले मे चार गुणा अधिक वीरों ने शहादत दी। इस तरह उनकी बलिदानी को स्मरण करने केउद्देश्य के रूप मे छः सौ फीट की उचाई वाले पहाड पर 54 फीट उँचा शहीद स्मारक बना कर सजाया गया।यहां पर गोविन्द गुरू की प्रतिमा भी स्थापित की गई।[59] गोविन्द गुरू आदिवासियो के मसीहा थे। बागड के आदिवासी समुदाय के लोकनायक थे। इनके कार्योंव आज के संदर्भ में आदिवासी विकास और विस्थापन पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कोकरिया, प्रेमसिंह, भील क्रांति के प्रेरणता; मोती लाल तेजावत, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, सन् 1985, पृ0 15
2. मायुर, एल.पी, गोविन्द गिर व उनका आंदोलन, महिमा प्रकाशन, रायपुर सन् 2005, पृ0 29
3. वही पृ0 30
4. कोकरिया, प्रेमसिंह, भील क्रांति के प्रेरणता; मोती लाल तेजावत, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, सन् 1985, पृ0 16
5. मायुर, एल. पी. गोविन्द गिर व उनका आंदोलन, गुरू महिमा प्रकाशन, जयपुर, 2005, पृ0 30
6. वही पृ0 30
7. जैन, भगवतीलाल, स्वतंत्रा संग्राम में भगत आंदोलन का योगदान, पृ0 18-23
8. कोकरिया, प्रेमसिंह, भील क्रांति के प्रेरणता; मोतीलाल तेजावत, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, पृ0 16
9. मायुर एल. पी., गोविन्द गिर व उनका आंदोलन, राज्य महिमा प्रकाशन, जयपुर, सन् 2005, पृ0 30
10. वही पृ0 37
11. वही पृ0 36
12. वही पृ0 36
13. वही पृ0 36
14. वही पृ0 36
15. वही 35,36
16. मीणा, हरिराम, धूणीतपेतीर, साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली, सन् 2016, पृ0 70
17. कांकरिया, प्रेमसिंह, भील क्रांति के प्रेरणता; मोतीलाल तेजावत, राजस्थान साहिस्य अकादमी, उदयपुर, सन् 1985, पृ0 16

18. मीणा, जगदीश चन्द, भील जनजाति का सांस्कृतिक एवं आर्थिक जीवन, हिमांशु पब्लिकेशंस, उदयपुर, सन् 2003, पृ0 1

19. गुप्ता रमणिका, आदिवासी अस्मिता का संकट, रमणिका फाइडेरान, दिल्ली, सन् 2013, पृ0 52

20. मीणा, जगदीश चन्द, भील जनजाति का सांस्कृतिक एवं आर्थिक जीवन, हिमांशु पब्लिकेशंस, उदयपुर, सन् 2003, पृ0 1

21. तिवारी, शिवकुमार (डा.), शर्मा, कमल (डा.) मध्यप्रदेश की जनजातियाँ: समाज और व्यवस्था, 38

22. वी. कृष्णा व भीम सिंह, (सम्पादक), आदिवासी विमर्श स्वराज प्रकाशन दिल्ली, सन् 14, पृ0 78

23. मीणा, जगदीश चन्द: भील जनजाति का सांस्कृतिक एवं आर्थिक जीवन हिमांशु पब्लिकेशन, दिल्ली, सन् 2003, पृ0 22

24. वही पृ0 14

25. मीणा, हरिराय, धूणीतपे तीर, साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली, सन् 2006, पृ0 125

26. वही पृ0 व सन् 125

27. वही पृ0 व सन् 124

28. कांकरिया, प्रेमसिंह, भील क्रांति के प्रणेता, मोतीलाल तेजावत, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, सन् 1985, पृ0 47

29. मायुर, पी. एल., गोविन्द गिर व उनका आंदोलन, शब्द महिमा प्रकाशन, जयपुर सन् 2005, पृ0 49, 50

30. वही, पृ0 50

31. वही, पृ0 57

32. वही, पृ0 29

33. सरकार, सुमित, अधिक भारत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2018 पृष्ट 174

34. वही, पृ0 59

35. वही, पृ0 51

36. मीणा, हरिराम, धूणी तपे तीर, साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली, सन् 2016, पृ0 353

37. वही, पृ0 356

38 शर्मा, बृज किशोर, राजस्थान में किसान एवं आदिवासी आन्दोलन, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, सन् 2013, पृ0 87

39. मीणा, हरिराम, धूणी तपे तीर, साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली, सन् 2016, पृ0 348

40. शर्मा, बृजकिशोर, राजस्थान में किसान एवं आदिवासी आन्दोलन, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, सन् 2013, पृ0 89

41. मीणा, हरिराम, धूणी तपे तीर, साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली, सन् 2016, पृ0 350

42. वही, 351

43. वही, 358

44. वही, 365

45 कार, ई. एच., इतिहास क्या है, त्रिनिटी प्रकाशन, पृ0 6

46. मीणा, हरिराम, धूणी तपे तीर, साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली, सन् 2016, पृ0 59

47. सरकार, सुमित, आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सन् 2009, पृ0 74

48 गुप्ता, रमणिका, आदिवासी लेखन उभरती चेतना, रमणिका फांउडेशन, दिल्ली, सन् 2011, पृ0 22-23

49 मीणा, हरिराम, धूणी तपे तीर, साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली, सन् 2016, पृ0 21

50. मायुर, एल. पी., गोविन्द गिर व उनका आन्दोलन, शब्द महिमा प्रकाशन, जयपुर, सन् 2005, पृ0 59

51 सरकार, सुमित, आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली सन् 2009, पृ0 174

52 माथुर, एल. पी., गोविन्द गिर व उनका आन्दोलन, शब्द महिमा प्रकाशन जयपुर, सन् 2005, पृ0 60

53. वही, पृ0 52

54. वही, पृ0 61

55. शर्मा, बृजकिशोर, राजस्थान में किसान एवं आदिवासी आन्दोलन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, सन् 2011, पृ0 97

56. मीणा, हरीराम, धूणी तपे तीर, साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली, सन् 2016, पृ0 355

57. शर्मा, बृज किशोर, राजस्थान में किसान एवं आदिवासी आन्दोलन, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर , सन् 2011, पृ0 100

58. वही, पृ0 101

59. मीणा, हरिराम, धूणी तपे तीर, साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली, सन् 2016, पृ0 20

अध्याय : चतुर्थ

मानगढ़ आंदोलन पर लिखित अन्य साहित्य से तुलनात्मक अध्ययन

हिन्दी साहित्य में मानगढ़ आंदोलन को लेकर तीन कृतियों आ चुकी है।'घूणी तपे तीर' हरिराम मीणा कृत उपन्यास विधा की रचना हैं। 'मगरी मानगढ़' राजेन्द्र मोहन भटनागर कृत उपन्यास विधा की रचना है। जबकि 'मोर्चो मानगढ़' घनश्याम भाटी प्यासा कृत नाटक विधा की रचना है। यहां हम धूणी तपे तीर और मगरी मानगढ़ का तुलनात्मक अध्ययन करेंगे। इन दोनों रचनाओं में कई स्तरों पर समानता और विषमता देखने को मिलती है।

उपरोक्त दोनों रचनाओं में कई स्तरों पर समानता स्पष्ट होती है। जिनको कुछ बिन्दुओं के आधार पर समझने का प्रयास करेगें।

दोनों रचनाएँ ऐतिहासिक दृष्टिकोण को पुष्ट करती दिखाई देती हैं। इनमें मृतकों की संख्या में साम्यता हैं। जो करीब-करीब 1500 के लगभग है। हरिराम मीणा अपने उपन्यास धूणी तपेतीर में इस बात को स्पष्ट करते हैं कि -

> ''**निष्कर्षतः कुल मृतकों की संख्या करीब डेढ़ हजार बैठती हैं।**''[1]

दूसरी तरफ मगरी मानगढ़ के 'राजेश मोहन भटनागर' मृतकों की संख्या थोड़ी ज्यादा बताते हैं। इस बात को गोविन्द की दूसरी पत्नी के माध्यम से आंकड़ों को उल्लेख करते हैं - ''सरकारी रिपोर्टों के अनुसार मानगढ़ मगरी हत्याकांड में पन्द्रह सौ सत्रह व्यक्तियों की जानें गई। जिनमें केवल वयस्क व बुजुर्गों की गिनती की गई है। बच्चों की गिनती नहीं की गई। इसके साथ खेडापा गांव की तरफ जाने वाले मरे लोगों को भी नहीं गिना गया। जो अंग्रेजों की गोलियों से भी मरे और भगदड़ की वजह से घाटी में गिरकर भी मरें।''[2]

दोनों रचनाओं के प्रमुख पत्र गोविन्द गुरु है। जिन्हें इतिहास में 'गोविन्द गिरी' नाम से संबोधित किया जाता है। इन रचनाओं में केन्द्रीय घटनाक्रम में संपसभा और सम्य सभा नामक समिति के गठन की पुष्टि हुई है। सम्प सभा और सम्य सभा के साथ-साथ विभिन्न स्थानों पर धूणियों की स्थापना करना और भक्त बनाने के कार्य को प्रमुखता से दिखाया गया है। भक्तों का अपने गुरु 'गोविन्द गुरु' के प्रति असीम श्रद्धाभाव दोनों में दिखाया गया है। पूंजाधीरा और कुरिया दोनों पुरूषपात्र दोनों रचनाओं में गोविन्द गुरु के अभिन्न भक्त-मित्रवत सहयोगी रहे।

दोनों रचनाएँ आदिवासी समुदाय में जनजागृति लाने के लिए धूणीधामों की स्थापना को महत्व देती है। इन धूणियों पर सफेद ध्वजा फहराना एक नियम सा था। भक्त लोगों में आपसी भाईचारा रहे और पहचान बनी रहे। इसलिए गले में रूद्राक्ष की माला धारण करना भी दोनों रचनाओं में प्रमुखताः से दिखाया गया है। दोनों रचनाओं में गोविन्द गुरु को अंहिसा का समर्थन करने वाला बताया गया है। गोविन्द गुरु आदिवासी समुदाय में सुधार आंदोलन के प्रणेता रहे। वह धार्मिक व सामाजिक सुधार में अग्रणी रहे। बनजारा समाज में जन्म लेने गोविन्द गुरु आदिवासी समुदाय में चहेत समाज सुधार रहे। इनका जीवन मूलरूप से आदिवासियों को समर्पित है। बेगार प्रथा का विरोध करना और अन्याय के प्रति सचेतके के रूप में हमारे सामने आते है। क्रिमिनल ड्राइब एक्ट 1871 व वन अधिनियम कानून 1878 का जिक्र दोनों रचनाओं में है। जिनका आदिवासियों के पारम्परिक जीवन पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ा जिससे आदिवासी समुदाय दयनीय स्थिति में आ गया। गोविन्द गुरु इन दोनों अधिनियमों का विरोध करते है। इनके परिणामों को आदिवासी समुदाय पड़े प्रभावों प्रभावों के रूप में समझाया गया है तथा इन्हें समाप्त कर आदिवासियों को अपना परम्परागत अधिकार प्राप्त करने के लिए तैयार करते हैं।

दोनों रचनाओं में सत्ता द्वारा आदिवासियों के प्रति उपेक्षा भरा रवैया दिखाया है। जगह-जगह प्रताड़ित करना दिखाया गया है। भौगोलिक क्षेत्र में अधिकांश स्तर पर समानता

दिखाई देती है। क्योंकि दोनों रचनाओं की घटनाओं का मूल स्थान मानगढ़ पहाडी और इसके समीपवर्ती स्थल है। गोविन्द गुरु आदिवासियों ये जनजाग्रति पैदा करने के लिए वर्तमान राजस्थान के दक्षिणी अंचल व उससे सटे गुजराती क्षेत्रों में भ्रमण करते है। पुलिस प्रशासन की तानाशाही जिसमें घूणी धामों को अपवित्र करना सफेद ध्वजों को फाड़ना इन दोनों रचनाओं में समानता को दर्शाती है। पूंजा भक्त द्वारा मउरा के थानेदार की हत्या की पुष्टि भी दोनों रचनाएँ करती है।

कम्पनी सरकार व स्थानीय सरकार/राजाओं के विभिन्न सैन्य दल मानगढ पर एकत्र भीड को कुचलने के लिए प्रस्थान ऐतिहासिकता को पुष्ट करती है। जिनका उल्लेख दोनों रचनाओं में हुआ है।पिंटू कुमार मीणा ने डॉ.0 ब्रजकिशोर शर्मा के हवाले से लिखा है कि Between 6th to 10 Novemben,1913 two compnies of Mewar Bhil Cops,One compny of 104th wellesley's Rifles, one company of 7th Rajput regiment reached to suppress the assembly of Bhils on Mangrah hill.

1913 ई0 में 6 से 10 नवम्बर के मध्य मेवाड भील कौर की दो कम्पनियां, 104वीं वेलेसली के नेतृत्व में एक कम्पनी 7वीं राजपूत रेजिमेंटआदिवासियों को दबाने के लिए मानगढ़ की पहाड़ी पर पहुंच गई।

गोविन्द गुरु एक लेखक के तौर पर भी हमारे सामने आते है। उनके द्वारा रचित गीत 'नी मानू रे भूरेटिया' दोनों रचनाओं में स्थान पाता है। इसके साथ आदिवासी समुदाय में जगनागृति की अलख जगाने में अप्रतीम वस्तु धूणियों की स्थापना माना गया। इन धूणियों की पवित्रता का वर्णन हर जगह मिलता है। सम्य सभा/संप सभा के उद्देश्य दोनों रचनाओं में एक समान से है।

गोवन्दि गुरु के गरिमामय व्यक्तित्व बनाने में जिन लोग महत्वपूर्ण योगदान रहा हैं वे- दयानंद सरस्वती, कबीरदास और अपने अध्यात्मिक गुरु राजगिरी गोसाई से वे सर्वाधिक प्रभावित हुए।

''पुजारी बाबा मरते दम तक यह सीख देता रहा कि दारु

और तम्बाकू से आदमी का शरीर व मन दोनों खराब

होते हैं। मैं भी इसतरह की आदत को अच्छा नहीं मानता।''4

''कमाल यह कला यह कला किससे सीखी गोविन्द ?

''आप से गुरु जी!''5

इस प्रकार गोविन्द गुरु अपने गुरु सर्वाधिक प्रभावित थे। यह दोनों से स्पष्ट होता है। छपन्या अकाल का जिक्र दोनों रचनाओं में है। जिसमें गोविन्द गुरु अपने परिवार को बिछुड जाते है। उनकी पत्नी और बच्चे अकाल की भेंट चढ़ जाते हैं।

दोनों रचनाएँ तत्कालीन ऐतिहासिक वातावरण का उल्लेख कई स्तरों पर करती है। इन रचनाओं की आधार भूमि इतिहास की घटनाएँ है। ऐतिहासिकता का खुलापाठ चित्रित हुआ है। अंग्रेजी राज की स्थापना और उसके विभिन्न दुष्परिणामेां की व्याख्या करती सी प्रतीत होती है। दोनों रचनाओं में आपराधिक अधिनियम के दुष्यपरिणामों को दिखाने की कोशिश की गई। जिनमें दोनों लेखक काफी हद तक सफल हुए। हरिराम मीणा का उपन्यास का तो एक इतिहास की पुस्तक की तरह लिखा गया है फिर भी विशेष बात यह है कि लेखकीय दृष्टि अपनी जगह बड़ी महत्वपूर्ण है। जिसमें आदिवासी जीवन की साझी झांकी दिखाई देती है। राजेन्द्र मोहन भटनागर के उपन्यास मगरी मानगढ़ में भी आदिवासी समाज पर विहंगम दृष्टि डाली गई है।

दोनों रचनाओं में अंग्रेजी राज से मिले स्थानीय शासकों की नीयत की चिट्ठी खोली गयी है। दोनों रचनाओं में लगभग-पन्द्रह सौ आदिवासियों के शाहदत पाने का वर्णन हुआ है। अंग्रेजी सरकार द्वारा जंगलता विभाग खोला गया। जिससे आदिवासियों की जीवनचर्चा पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ा।

दोनों रचनाओं में गोविन्द गुरु को अंहिसा का पुजारी और मानव धर्म का पुरजोर वाकालत करते दिखाया गया है। गोविंद गुरु आदिवासी समुदाय का कल्याण करना चाहते, इंसानियत की जिंदगी जीना सीखाते है। आदिवासियों की गोविन्द गुरु के प्रति अपार श्रद्धाभाव है। जिस कारण स्थान-स्थान परभावी हृदयी नजर आते है।

''**गोविन्द गुरु की जय!**

गुरु महाराज की जय!!''[6]

''**जय गुरु महाराज**''[7]

दोनों रचनाओं में यह घटना मानगढ़ पहाडी पर घटित होती दिखाई है। नरसंहार के बाद गोविन्द गुरु की गिरफ्तारी पर दोनों रचनाएँ सहमत हैं। लेकिन दोनों रचनाएँ इस बात पर सहमत नहीं है कि गोविन्द गुरु अपना भील राज्य स्थापित करना चाहते थे।'[8] जबकि दोनों रचनाएँ इस बात पर सहमति जताती है कि देशीराज्य गोविन्द गुरु द्वारा 'भीलराज्य' की स्थापना संबंधी अफवाह फैला रहे थे। जिसमें काफी हद तक उनको सफलता मिली। इसी कारण गोविन्द गुरु को शटन कहता है। तुम भील राज्य स्थापित करना चाहते हो।

''तुमने भील राज्य बनाने के लिए यहाँ इन सबको बुलाया है टाकि टुम भील राजा बनकर यहां हुकुम कर सको।''[9]

''सभी शासकों ने यह सोचा कि गोविन्द गुरु की अगवाई में आदिवासी विद्रोह का बिगुज राजपूत-शासन के खिलाफ है। ऐसा करना आदिवासी राज की स्थापना का पूर्व संकेत माना गया है।''[10]

दोनों रचनाओं में वागड़ प्रदेश के आदिवासी समुदाय विशेषकर भील-मीणा समाज का चित्रण हुआ है। कहीं-कहीं गरासियों का भी जिक्र किया गया है। साथ ही साथ दोनों रचनाओं के नायक गोविन्द गुरु स्वयं बनजारा समाज से संबंध रखते हैं।

गोविन्द्र गुरु आदिवासियों में जनजागृति फैलाने का कार्य आरंभ करते हैं। सामाजिक स्तर उनके मध्य परस्पर भाईचारे की भावना का विकास करने का हरसंभव प्रयास करते हैं। इस कार्य को मूर्त रूप में देखने के लिए आदिवासी लोगों की एक समिति/संस्था गठित करते है। धूणीतपे तीर में संप सभा और मगरीमानगढ़ की सम्य सभा में नाम की भिन्नता है जिसका मूल उद्देश्य आदिवासी समुदायों में व्यापक स्तर पर सामाजिक सोंहार्द्र की भावना उत्पन्न करना था। आदिवासी समुदाय में नई चेतना पैदा करना था। इस संस्था के माध्यम से गोविन्द गुरु आदिवासी समुदाय में फैली सामाजिक कुरुतियों, रुढ़ियों और अंधविश्वास भरी भावनाओं का विरोध करते है। अदालती विवादों का निपटारा आपसी सलाह-मशविरा के माध्यम से करे अदालतों में उनका शोषण होता है। उनके साथ दोयम दर्ज का व्यवहार किया जाता है। न्याय भी निष्पक्ष नहीं होता है। अतः उनका बहिष्कार करे और आपसी विचार-विमर्श से झगड़ों का निपटारा करें। सम्प सभा का मूल उद्देश्य आदिवासी समुदाय में व्यापक स्तर चेतना की जागृति करना है। जिससे आदिवासी समुदाय में परस्पर भाईचारा, करुणा, अहिंसा, आपसी प्रेम और सौहार्द्रमय सहयोग के प्रति विश्वास बढ़े।वस्तुतः आदिवासी समुदाय और संप सभा/सम्य सभा में अतःसंबंध है। जिसका दोनों रचनाओं में स्पष्ट चित्रण हुआ है।

आदिवासी समाज में व्यापत विभिन्न सामाजिक कुप्रथाओं का चित्रण दोनों रचनाओं में हुआ है यथा डायन प्रथा, भूत-प्रेत का साया, भोपाओं द्वारा भूत-प्रेत का साया निकालना, जादू-टोना व झाड़-फूंक इत्यादि। आदिवासी समुदाय का प्रकृति प्रेम व उसके साथ मित्रवत व्यवहार और सामाजिक व्यवहार मे इसका योगदान इत्यादि की चर्चा दोनों रचनाओं में देखने को मिलती है। आदिवासी समुदाय की सबसे बड़ी समस्या मदिरापान का जिक्र भी दोनों रचनाओं में हुआ है उससे बड़े पैमाने पर कुप्रभावों का भी जिक्र हुआ है।'धूणी तपेतीर' में भीलड़ देव के थान पर एक अधेड व्यक्ति की आलाप इस बात की पुष्टि करती है। तो दूसरी तरफ 'मगरी मानगढ़' में गनी शराब पीने वाले लड़के से विवाह नहीं करने की बात कहती है।

आदिवासी समुदाय में विवाह करने में स्त्री को स्वतंत्रता प्रदान है। वह अपने मनपसंद के योग्य वर का चयन कर सकती है। विवाह से पूर्व रस्मों के लिए पसंद और नापसंदगी पर स्त्री का निर्णय ही मान्य होता है। धूणी तपेतीर में नंदू और कमली का प्रेम इसका जीता जागता उदाहरण है। मगरी मानगढ़ में बदली और गनी का गोविन्द गुरु के साथ प्रेम संबंध इसकी पुष्टि करता है। हाँ गोविन्द गुरु के प्रति प्रेम संबंध साधू मर्यादा के खिलाफ अवश्य है लेकिन जो अंतर से फूटता है उसका कोई दूसरा विकल्प नहीं। नंदू को खाना परोसने वक्त कमली का जागरुक व्यवहार और कमली द्वारा गोफन से नंदू पर कंकड फेंखना अंतर का खुला जुड़ाव दिखाई देता है।

वहीं मगरी मानगढ़ में बदली द्वारा अपनी लाल रंग की ओढ़नी को हवा मैं लहरा देना ओर उसे पता तक नहीं रहता कि क्या कर रही है? दूसरी तरफ गनी द्वारा गोविन्द गुरु से आत्मिय प्रेमभरा वर्तालाप इत्यादि ऐसे उदाहरण है जिनसे स्पष्ट होता है कि आदिवासी समाज में वर पक्ष चुनने का अधिकार था।

> **''ये संभालों पुड़िया। फांक जाओ। ऊपर से गरम-गरम दूध चढ़ा जाओ। ताप कम हो जाएगा। तीन चार पुढ़िया में ताप छुमंतर फिर भले चंगे। एकदम गबरु। ..... फाँकों न''**[10]

दोनों रचनाओं में आदिवासी विपन्नता का भी विवरण दियाग या है। आदिवासी समुदाय छोटी-छोटी झोपड़ियाँ में निवास करता है। पहनने तथा ओढ़ने के कपड़े भी कम होते है। प्रकृति से प्राप्त सामग्री से अपना जीवन यापन करते है।तथा पशुओं के प्रति गहरा प्रेम भाव होता है। कह सकते है कि आदिवासी सामज पशु-पेरमी होते है। धूणी तपेतीर उपन्या समें'दल्ली का बकरिया चराना और दल्ली के साथ अनहोनी घटना हो जाने के बाद जब बकरियाँ अकेली ही पाँच्या की झौपडी के आंगने में पहुँचती है लेकिन दल्ली के न होने से

उनकी आँख नम हो जाती है।'[11] मगरी मानगढ़ में गोविन्द की माँ कहती है कि गोविन्द का पढ़ना लिखना बंद किया जायेगा, अबवह अपना सारा ज्ञान बकरी और गायों को चराते हुए प्राप्त करेगा वही वास्तविक ज्ञान होगा।

''अब थे धवरी गाय से ज्ञान पायेगा..... वे भी चार है
पाँचवी पीली जवान गाय है। बकरी अलग। उनहें चरायेगा
और उन जैसा मलूक ज्ञान पाएगा।''[12]

सामाजिक स्तर आदिवासी समाज देशी शासकों से प्रताड़ित भी होते थे। उनका आर्थिक शोषण किया जाता। देशी राज्यों द्वारा कर वृद्धि भी इन समाजों के लिए बड़ी मार थी। दोनों रचनाएँ आदिवासी समाज का सांगोपांग चित्रण करती है। जिसमें उनकी विभि परम्पराओं का यथासंभव उल्लेख होता गया है।प्रकृति प्रेम, पशु प्रेम, आत्मीयभाव, मिथकों और कुल देवी देवताओं के प्रति गहरा लगाव और श्रद्धामय भावों को स्पष्टतः उल्लेख हुआ है। यह समाज ऐसा समाज है जिसके पास अपनी अखंड सामाजिक परम्परा है। जिसमें रहते वह अपने दुःखों को भूल जाते है। रमणिका गुप्ता का यह कथन अधिक उचित प्रतीत होता है।''हम एक ऐसा समाज, जिसके मूल्यों का न ह्रास हुआ है, न ही उमें विकृति आई है। हम सामूहिक जीवन प्रणाली में जीते रहे हैं, समाज और समूह में रहते हैं, तुम्हारे द्वारा दी कठिन जिंदगी को हम अपने गीतों और नृत्यों से भुलाते रहें हैं।''[13]

धार्मिक स्तर पर दोनों रचनाओं में एकमत दिखाई देता है। भगवान शिव को आदिवासियों में पुरखों से पूजा-मनाया जाता है। शिव को उनका परम्परागत पूज्य आदि देव माना गया है। गोविन्द गुरु आदिवासियों के मध्य शिव को महत्वपूर्ण देव-भगवान बताते हे। आदिवासी भी इस बात पर विश्वास करते है कि भगवान शिव उनके लिए अच्छा करेंगे जिनसे उनकी जिंदगी में बदलाव आयेगा। दोनों रचनाओं में गोविन्द गुरु की एक ब्राह्मण महाशय से

हुई। जिससे वह अपने गुरु के बहुत प्रिय शिष्य है और दुनियां का विशेषकर आदिवासी समुदाय में चेतना जागृत कर दुःख हरण वाला बनाया गया है। गोविन्द गुरु अपने सम्पूर्ण जीवन को आदिवासी जीवनचर्या सुधार में समर्पित करते है। गोविन्द गुरु मुख्य रूप से अंहिसा के पुजारी थे। गोविन्द गुरु बचपन में ही जीव के दया दिखाते आए। यदि हम जीव को मारते है तो अगले जनम में उसी योनी में जन्म लेकर उसी जीव की भांति मरना होगा।

''किसी भी जीव को बेवजह मारना पाप है।''[14]

छोनों रचनाओं में गोविन्द गुरु धार्मिक प्रवृति के घटित है। वे कबीर, रेदास आदि निर्गुण उपासक संतोमहात्माओं से प्रभावित थे। उनसे प्रभावित होने के कारण वे अंधविश्वास व जादू-टोना में रत्ती भर भी विश्वास नहीं करते थे। उनका मानना था कि इनसे व्यक्ति का तन और मन तो खराब होता हि है साथ ही समाज की भी दुर्दशा होनी शुरू हो जाती है।'धूणी तपेतीर' में हरिराम मीणा सेंगा जी के माध्यम से कहलवाते है कि जादूगर लोग अत्याचार करते है। अपना स्वार्थ साधते है। इनकी नियति और कर्म दोनों बुरे होते है।

"ये जादूगर लोग बुरे व अत्याचारीराजा. महाराजा है सूदखोर महाजन है और विलायती फिंरगी है।"[15]

ये जादूगर लोग समान्य लोगों को जाल में फंसा लेते हे फिर उन्हें कलपाते रहते ह। इसलिए आप लोग जादूगरों की चालबाजी को समझो और उनसे बचने की पूरी तन्मया से कोशिश करो। इनके जादू-टोने से छूटकारों से प्राप्त करें।

"बुरे इन्सान के जाल की पहचान करो व इनके जाल से छूटने का प्रयत्न करो।"[16]

'आप लोग इन मंत्र-तंत्र, जादू-टोनों में विश्वास न जताये। इनसे हमारा समाज बरबाद हो रहा है इन्हीं अंधविश्वासों का परिणाम है कि हमारा समाज इतने वर्षों के उपरान्त वहीं का

वहीं है जहां शुरूआत में था।'[17] इसलिए जादू-टोना पर विश्वास नहीं करें। स्वयं और स्वयं के घरों को शुद्ध करने के लिए घी व नारीयल का हवन करे। जिससे बुरी आत्माएँ, बुरे विचार स्वतः ही दूर हट जाते है। चहुँ ओर खुशीलहाली का वातावरण निर्मित होने लगता है। अपने संस्कारों को उत्कृष्ट बनाओं और अपने बच्चों में भी अच्छे संस्कार भरे का भरसक प्रयत्न करो। भजन कीर्तन में हिस्सा ले उसके सद्गुणो को धारण करें।'

"अपने बच्चों में संस्कार पनपाओं संस्कार देने वाले लोगों से गाँव-गाँव में कीर्तन कथा और अच्छी बातें सीखो।"[18]

गोविन्द गुरु ने आदिवासियों को शिक्षा का महत्व समझाया।उन्होंने शिक्षा पर सबसे अधिक बल दिया। उनका मानना था कि स्वयं का विकास करने का एक मात्र उपाय शिक्षा ही है। जिससे व्यक्ति में अच्छे और बुरे की तुला करने की विवेक सम्मत बुद्धि का विकास हो जाता है। परिणाम स्वरूप वह अपनी जिंदगी के फैसले लेने खुद ही शुरू कर देता है।

> **''पढ़ाई लिखाई के महत्व को समझो। मैं स्कूल नहीं पढ़ा,**
> **लेकिन इधर-उधर आखर ज्ञान सीख लिया। तुम भी सीखो।**
> **बच्चों को पढ़ाओं। तभी वे समझदार बनेंगे। गाँव-गाँव मे**
> **जो पढाओ लिखा हो, उसका धर्म है कि अन्य लोगों को पढ़ावे।''[19]**

गोविन्द गुरु ने आदिवासी समुदाय को धर्म और सत्य के मार्ग से अवगत कराया ईश्वर पूजा, परस्त्री गमन, चोरी, धोखाधड़ी, शत्रुता व वैमनस्य रूपी भावों को पूर्णतः त्याग और पारिस्परिक प्रेम को बढ़ावा देना, अन्य लोगों को सोहदर भ्राता मानते हुए आदर सत्कार करें, शांतिमय जीवन जीने का प्रयत्न करें। जीवन में समृद्धि लाने के लिए कृषिकर्म को ईमानदारी के साथपूर्ण करें, जादू-टोना की गिरफत में न आये। ये लोग चक्कर में डाल देते है उनसे बचने के लिए धूनियों पर जाए उसे पवित्र रखे, जगह-जगह ध्वजा पहराएँ ओर उनकी पूजा करें। इत्यादि शैक्षिक वार्ताएँ दोनों विवेच्य रचनाओं चित्रित हुई है।

दोनों रचनाओं में गोविन्द गुरु के दीक्षा गुरु रामगिरी गोसाई है। राजगिरी गोसाई की शिक्षा का प्रभाव था कि, गोविन्द गुरु अपने प्रारंभिक जीवन में गोविन्द नाम से जाने जाते थे अब गोविन्द गुरु कहलाने लगे। दोनों रचनाओं में गोविन्द गुरु अपने गुरु के चहते शिष्य है। समय अन्तराल पर गोविन्द गुरु ने अपने ज्ञान क्षेत्र को विस्तृत किया। अब वे स्वामी दयानंद सरस्वती के सम्पर्क में आए। दयानंद सरस्वती के ज्ञान से प्रभावित होकर उन्होंने भारतीय पुरातन 'संस्कृति की रक्षा करने की ठानी। स्वदेशी आंदोलन के हिस्सेदार बने। स्वदेशी का प्रचार-प्रसार किया। भारतीय पुरातन संस्कृति की परम्परा में रहते हुए धूणी स्थापना व यज्ञ कर्म संपन करने लगे। अपने भक्तों के लिए रूद्राक्ष की माला पहने के नियम बनाया। भक्त लोगों की पहचान के लिए वेशभूषा पर ध्यान दिया। अपने गुरुत्व दायित्व को ध्यान में रखते हुए तीन बातें स्वयं के लिए आवश्यक थी।

''**शिष्यों का उत्थान, गुरु मंत्र व गुरु की शिक्षा**''[20]

'उनका मानना था कि भक्त ही बड़ा है। भगवान भी उनसे छोटे है। उनको माने वाला ही, उनकी पूजा अर्चना करने वाला ही सबसे बड़ा है। इसलिए आप ढोंगी लोगों के चक्कर में मत आओ। जादू आदि कुप्रवृत्तियों से बचो। आप ईश्वर को मानते हो तो ईश्वर से बड़े हो।'[21]

गोविन्द गुरु अपने भक्तों को आनुभूतिक ज्ञान की गरिमा समझाते थे क्योंकि आनुभूति ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है। वह चेतन्य है। आत्मा से जुड़ा हुआ है। उससे हमें शक्ति मिलती है। उसी शक्ति के सहारे यह चराचर जगत नित्य गमिमान है। अतः उसी का संयोग से। अंधविश्वासों से दूर रहें। आनुभूतिक ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करे। उनका मानना था कि -

क्योंकि अनुभूति जन्य ज्ञान ही सच्चा ज्ञान हे। वह चेतन्य है।आत्मा से जुड़ा हुआ है। उससे हमें शक्ति मिलती है। उसी शक्ति के सहारे यह चराचर जगत नित्य गतिमान है। अतः उसी का संयोग रखे। अंधविश्वासों से दूर रहें। आनुभाविक ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करे। उनका मानना था कि -

''जन अंधविश्वास का शिकार होता है और ठगा जाता है।''[22]

गोविन्द गुरु अपने भक्तों में शिक्षा का प्रचार करने हेतु पाठ्यशालायें खोलते है। उनका शिक्षा के प्रति लगाव है। धूणी तपेतीर में गोविन्द गुरु जगह-जगह धूणी धामों की स्थापना करते है। जिनका मुख्य उद्धेश्य आदिवासी समाज में जाग्रति पैदा करना है। जिससे वह अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो सके। सामन्ती तत्वों द्वारा किये गए हस्तक्षेप का विरोध कर सके। अपनी वासतविकता की पहचान कर सके। बेगारी और अनियंत्रित कर व्यवस्था का विरोध कर सके। मगरी मानगढ़ का मानामीणा इस संदर्भ कहता है -

''कभी म्हाने पाठ्शाला चलाने की कोशिश की थी। सामंतों के कान खड़े होगए थे। वे डरने लगे थे और उन्होंने पाठशाला बंद करवादी थी। अब अपने गुरुमहाराज गोविन्द जी की कृपा कृपा से फिर पाठशाला शुरू करने जा रहा हूँ।''[23]

प्राचीनकाल से जंगलों में वास करने वाला आदिवासी समाज अपने परम्परागत पूज्य भगवान और देवी-देवताओं को मनाता आया है। इन रचनाओं में आदिवासी पुरखों से आदिदेव महादेव को अपना इष्ट और आराध्य देव मानता है। भोलेनाथ ही सब कुछ है। किसी खुशी के सांझेदार भोलेनाथ है तो किसी गमीया उलाहेना के भागीदार भी भोलेनाथ ही है। रूपा जी द्वारा गाया गया गीत

''ओ.....
शिव पार्वती में हुई लड़ाई
भाई वन रेवासी हो जी....।''[24]

इसी के बरक्स भटनागर जी ने माना मीणा के माध्यम से बताया कि भोलेनाथ ही आदिवासियों के देव है। जिनकी स्तुति में एक भजन इस प्रकार है -

''आगे तो बाबा ने पीछे औ पार्वती

नंद्या री असवारी चाल्या आवो ओ महादेवजी।''[25]

दोनों रचनाओं में राजनैतिक स्तर भी समानता मिलती है। दोनों रचनाओं में तत्कालीन रियासतों डूँगरपुर बांसवाड़ा, सूथ-ईडर, संतरामपुर के महाराणाओं व महारावलों का उल्लेख हुआ है। इनके साथ विभिन्न सामन्तों का उल्लेख किया गया है। इन रियासतों के साथ-साथ ब्रितानी हुकूमत के क्रियाकलापों की जानकारी स्पष्ट हुई है। कम्पनी सरकार के अंग्रेज अधिकारी सहायक एजेंटों, कैप्टनों और अन्य कर्मचारियों का उल्लेख हुआ है। सरकारी महकमों द्वारा आदिवासी समाज पर किए गए अत्याचारों का भी उल्लेख हुआ है। अंग्रेजी अधिकारियों व राजामहाराजाओं द्वारा राजनैतिक षड़यंत्रों का उल्लेख हुआ है।

भारतीय इतिहास की एकमहत्वपूर्ण घटना भूमि संबंधी नये कानून-कायदे बनाना है। जिसका कत्र्ताधत्र्ता लार्ड कार्नवालिस था। उसने भूमि के स्थायी बंदोबस्त को लागू किया। जिसका परिणाम यह हुआ कि सदियों से अपना अधिकार मानकर, सदियों से जमीन के साथ आत्मीय जुड़ाव रखने वाला यह समाज जमीन से बेदखल होने लगा। जमीनी जुडाव खत्म होने से झूंमिग कृषि की परम्परा खत्म होने लगी। आदिवासियों पर लगान बढ़ाने आरंभ हुए। उनके जीवन में परेशानियाँ आरंभ हो जाती है। अब आदिवासी समाज के लोग किसानी जीवन छोडने पर मजबूर हो जाते है। क्योंकि बढ़ा लगाने नहीं चुका जाते और श्रमिक बन जाते है। 1871 ई0 में ब्रिटानी हुकूमत आपाराधिक अधिनियम बनाती है। जिससे आदिवासियों के जीवन पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ता है। इस अधिनियम में 14 से अधिक आयुवर्ग के व्यक्ति को थाने में उपस्थिति दर्ज करानी पड़ती थी। इस अधिनियम का प्रभाव यह हुआ सीधे-सीधे आदिवासियों पर जुल्म ढोने शुरू हो गए। थानों में उन्हें अपमानित किया जाता उनके साथ बुरा व्यवहार किया जाता था। उनको मानसिक रूप से प्रताड़ित किया जाता था।

ब्रितानी हुकूमत द्वारा 1878 ई0 में बनाया 'वन अधिनियम कानून 1878 बड़ा धांसू कानून था। इस अधिनियम को लागू कर ब्रिटानी हुकूमत ने वनोपज के एकत्रण व व्यापार पर पाबंदी लगा दी। इसका परिणाम यह हुआ कि आदिवासी समाज अंग्रेजों को शोषकों की दृष्टि से देखने लगे। सदियों से वनों में रहता और वनों से ही जीवन यापन करने वाला समाज आज कानून के पिंजरे में बंद हो गया। जिस वन से आदिवासी समाज परम्परागत भरण-पोषण करता था। अब वही समाज अंग्रेजों का मुंह ताकने लग गया। जिस वन पर उनका पुस्तेनी हक था। इसी पुस्तेनी हक को प्राप्त करने और अपने अधिकारों को पुनः प्राप्त करने के लिए आदिवासियों के मसीहा गोविन्द गुरु अपना जन जागृति आंदोलन आरंभ करते हैं। उनका जनजागृति आंदोलन प्रारंभिक दौर में सामाजिक धार्मिक आंदोलन था। जो धीरे-धीरे राजनीति से जुड़ता गया और अन्ततः आर्थिक पहलुओं पर आ टिक जाता है। क्योंकि राजनीति को प्रभावित करने वाला करकों में सबसे अधिक वर्चस्व रखने वाला कारक आर्थिक कारक है। इन उपरोक्त बिंदुओं का उल्लेख दोनों रचनाओं में प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से हुआ है। देशीराज अपने शासन को कायम रखने के लिए ब्रिटिश सरकार को सहयोग की अपेक्षा रखती है।

देशी राजाओं-महाराजाओं को यह डर सताने लग गया कि गोविन्द गिरी/गुरु भील आदिवासियों के सहयोग से 'भील राज्य' की स्थापना करना चाहते हैं। महरावल शंभू सिंह का यह कथन देशीमहाराजाओं के भय को स्पष्ट करता है -

''वैसे तो सब ठीक चल रहा है, लेकिन गोविंद बनजारा
की हरकते हमारे राज्य मे भी फैली रही है।"[26]

दूसरी तरफ अंग्रेज सरकार देशी राज्यों के आधार पर गोविन्द गुरु को सत्ता परिवर्तक के रूप में देखती थी। जय सिंह का यह कथन स्पष्ट करता है -

''याद रहे कि कभी मेवाड़ और हाडौती साम्राज्य, भीलों के पुरखों

का ही था। स्वामीगोविन्द गिरी भीलों के मन में वही सोचा हुआ सपना जगा रहे हैं। अंग्रेज सरकार इसे भील संगठन का सत्ता परिवर्तन का प्रयास मान रही है।''[27]

इस प्रकार देशी राज्यों को और अंग्रेजी हुकूमत को भय था कि गोविन्द गुरु आदिवसियों को भड़काकर कहीं अपना राज्य कायम नहीं ले।इसलिए दोनों पक्षों ने संकीर्ण विचार को त्यागना श्रेयस्सकर समझा।

'गोविन्द गुरु अपना भील राज्य खड़ा करना चाहते है। देशी राज्य इस हेतु अंग्रेजी हुकूमत से सहयोग की अपेक्षा रखते हैं इसलिए दोनोंपक्ष परस्पर सहयोग करेंगे। इस कार्य हेतु संधि भी की गई जिसमें दोनों का एक दूसरे के प्रति वफादार रहना और आवश्यकता पड़ने पर सहयोग अपेक्षित था।'[28]

दोनों रचनाएँ इस बात पर भी सहमत है कि गोविंद को पकड़ना और उनके द्वारा चलाए जा रहे सुधार कार्यों पर रोक लगाना सत्ता का मुख्य ध्येय था। इस कार्य को अंजाम देने हेतु विभिन्न कार्यों को सम्पन्न किया गया। गोविंद गुरु को एक बार पकड़ कर काल कोठरी में डाला गया। आदिवासी जनता द्वारा विरोध किए जाने पर उनहें जेल से मुक्त किया गया। फिर दूसरी बार जेल लाने के लिए विरोध करने वाली आदिवासी जनता को मानगढ़ पहाड़ी पर हथियारों से कुचला गया और गोविन्द गुरु को गिरफ्तार कर लिया गया। कोर्ट के फैसले में उन्हें कुछ शर्तों के साथ रिहा कर दिया जाता है। इन समस्त क्रियाकलाओं के पीछे आदिवासी समाज को बिखेरने और ब्रिटानी हुकूमत ए.जी.जी. कैप्टन स्टाक्ले,पीटरसन, वेलेसली आदि अंग्रेज अधिकारी आदिवासियों के हक की चुनौति को बेरहमी से कुचल देते है और अपनी निष्ठुर वीरता का परिचय देते हैं। वस्तुतः कहा जा सकता है कि गोविन्द गुरु द्वारा शुरू किया गया सामाजिक धार्मिक सुधार आंदोलन अन्ततः राजनैतिक आंदोलन में हो परिणत हो गया। जिसके पीछे के वभिन्न कारणों की पुष्टि दोनों रचनाएँ समान स्तर पर कर रही है।

किसी देश-समाज, जाति के आचार-विचार का सम्मिलित स्वरूप ही संस्कृति है। आचारण से भौतिक सभ्यताएँ प्रभावित होती है और पहचानी जाती है। उनके रहन-सहन के तौर-तरीके विवाह संस्कार व उनके जीवन को प्रभावित करने वालेअन्य संस्कार और व्यवहार सम्मिलित होते हैं। विचार किसी दर्शन अथवा वैचारिक का क्रमशः व्यवहार ही विचार हे। विभिन सामाजिक प्रथाएँ और रीति-रिवाज, आचार-विचार में समायोजित है। जिन्हें अलग-अलग नहीं कर सकते। दोनों रचनाओं में सांस्कृतिक स्तर पर कई स्तरों पर समानता है। इन रचनाओंमें वागड़ प्रदेश की लोक संस्कृति का सांगोपांत्र चित्रण हुआ है। आदिवासी समाज के रीति-रिवाजों, परम्पराओं, प्रथाओं उनके धार्मिक व सामाजिक आचारणों सहित लोक जीवन की झांकियों को समेटते हुए समूचे लोक सांस्कृतिक परिवेश को उजागर करने वाले विभिन्न आचरणिक व्यवहारों का इन दिनों रचनाओं में स्पष्ट उल्लेख हुआ है। कुछ परम्पराएँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलते अपने वास्तविक स्वरूप को त्याग देती है। उनमें विकृतियाँ आ जाती है। जिससे वे रुढ़ियाँ कहलाने लग जाती है। इन रुढ़ियों से समाज का प्रत्येक हिस्सा प्रभावित होता है। जिससे सामान्य तौर पर चलने वाला जीवन अस्त-व्यस्त होने लगता है। अनेक बुराइयाँ पनपने लग जाती है। जिससे आम नागरिक का जीवन बाधित होता है। जीवन का मिठास कम होने लगता है। जीवन यंत्रवत होने लगता है। जिसपर पाबंदी-सी जकड़न महसूस होती है। लेकिन रुढ़ियों के प्रभाव से इन समस्त बातों को समझ नहीं पाता। गोविन्द गुरु आदिवासी समाज में फैली इन्हीं रुढ़ियों को बाहर निकालने के लिए अपना जनजागृति अभियान चलाते है। जिसका खुला-चित्रण दोनों रचनाओं में मिलता है।

आदिवासी परम्परा लोक परम्परा है। यह लिखित कम मौखिक अधिक है। इस परम्परा में मिथकों का संयोग है। मिथक लोक मानस की आदिय सभ्यता से जुड़ा है। जिसमें आदिधर्म, विज्ञान कला, विचार, दर्शन इत्यादि शामिल होते है।डॉ.0 नगेन्द्र का मानना है कि -

‘‘मिथक मानव की चेतन शक्ति की बजाए अचेतन शक्ति का संबंल है। जिससे चराचर जगत के प्रत्यक्ष और परोक्ष व्यवहार संचालित और कुछ स्तरों पर भी नियंत्रित होते है।’’[29]

यह मिथक हमें इस बात से आश्वस्त कराते हैं कि आदिवासी समाज की जड़े बहुत गहेरी है। क्योंकि आदिवासी समाज में कई मिथकीय कथाएँ प्रचलित हैं। जैसे प्रेत विद्या का उल्लेख और मकना हाथी की कथा। दानों कथाएँ पापाचार को नष्ट करने वाली है। हाँ प्रेत विद्या से सचेत रहने की बात अवश्य कही गयी है। थकना हाथी की कथा के माध्यम से ईश्वरीय कल्पना द्वारा भोले-भाले इंसानों का अंधविश्वास से प्रात दुःखों से मुक्ति का मार्ग बताया गया है। मेगड़ी विवाह और भैमाता का क्रियाकलाप और संसार की निर्माण प्रक्रिया से संबंधित अन्य विभिन्न मिथकीय कथाओं का भी उल्लेख हुआ है।

‘मगरी मानगढ़’ उपन्यास में भी स्थान-स्थान पर आदिवासी समुदाय की लोक परम्पराओं की अभिव्यक्ति हुई है। लोक गीत, लोकोक्तियाँ, कहावतें आदि भी यथासंभव स्थान पाते हैं। गोविंद गुरु का इसाई धर्म पर वार्तलाप अपने आप में अनूठा प्रयोग है।

“उपन्यास मगरी मनगढ रूगोविन्द गिरी में भी आदिवासी लोकगीतों, कहावतों,लोकोक्तिओं, तथा मिथकों आदि का उल्लेख हुआ है। गोंविद गुरु ईसाई धर्म प्रचार को रोकने के लिए लोकोक्तियों व कहावतों का प्रयोग करते है ”[30]

आदिवासी समाज प्रकृति के सामजस्य रखता हुआ अपना रंगीन जीवन जीता है। इस समाज में विभिन्न उत्सव-त्योहार आते रहते ह। सामूहिकता ही आदिवासी की मुख्य पहचान है। वर्ण और जाति जैसी व्यवस्था से मुक्त होने के कारण सभी जन एकसाथ उठते-बैठते, खाते-पीते उत्सव त्योहार मानते हुए रिश्ते-नाते करते है। आदिवासी समुदाय में स्त्री को थोड़ी ज्यादा स्वतंत्रता होती है। हालांकि परिवार का मुखिया तो अधिकांश स्तर पर पुरूष ही होता

है। लेकिन पारिवारिक निर्णयों में स्त्री की सहमति ली जाती है। मेलों त्योहारों में लोगों का एकत्र होना, युवक-युवतियों का आकर्षण और भागकर पहाड़ पर चढ़ना, समाज के पंचों का विवाह हेतु निर्णय आदि क्रियाएँ उनहें अन्य समाजों से भिन्न दर्शाती है।यहाँ पुरूष वरण की बात स्पष्ट होती है। धूणी तेपतीर में लाखा बनजारा की पुत्री का प्रेम, नंदु और कमली का प्रेम आदि इसके जीते जागते उदाहरण है। दूसरी तरफ 'मगरी मानगढ़' में बदली का और गनी का गोविन्द गुरु के प्रति प्रेम अपने आप में पुरूष वरण का खुला चित्रण हुआ है।

स्त्री स्वयं को सजाने संवारने में कुछ ज्यादा रमती हैं। आदिवासी समाज में आज भी लड़कियां और स्त्रियां सजना पसंद करती है। किसी मेले और त्योहर पर यह गतिविधियाँ ज्यादा स्तर पर देखने को मिलती है। मार्गशीर्ष पूर्णिमा के दिन भरने वाले मेले में आदिवासी लोग सजधज कर आये। औरतों ने कुछ ज्यादा ही श्रृंगार किया।'उनके हाथों में चांदी के गजरे व चुडे थे, लाख की चुडियाँ, नारियल के कासले, साथ ही अन्य अंगो पर कुकड़ विलाम, के मोरिये पहने, लाख की कामली,घूंघरीदार चाँदी की बगड़ी, कंकणी और कासली पहन रखी थी। बाजुओं के श्रृंगार में बाजूबंद, चूड़ा (लाख का) उंगूली में चांदी की अंगूठी व अन्य अंगुठियाँ पहनी हुई थी। कुछेक औरतों ने चांदी वाले हथफूल पहन रखे थे। सिर पर बोरला (चांदी का) और बालों में राखड़ी गुंथी हुई थी। कुछेक औरतों ने हथफूल भी पहने। बालों में फंदा सिर से लेकर ऐडी तक पहना हुआ था। झेले और बेडले कानों में पहन रखा था। युवतियाँ चोली में चांदी के बटन लगा कर आई। कुंवारी कन्याओं और सधवा महिलाओं ने लाल चुनड़ी राती कापड़ी और लाल घाघरा पहने हुए थी। विधवाओं ने बोरला, बाजूबंद व पैर की कड़ी को छोड़कर सभी आभूषणों से सज्जी हुई थी। पुरूषों ने हाथों में चांदी के कड़े पहे कानों सोने की मुरकी, भयरकड़ी, बाजू में भोरिया, कमर में कंदरो, गले में आहड़ी आदि आभूषण पहन रखे थे।

आदिवासी समुदाय में लोक गीतों का बहुत अधिक महत्व है। प्रत्येक त्योहार पर एक न एक गीत गाया जाता है। लोकगीत उनके जीन की झांकी है। जीवन का मीठास है, जीवन का लोकरंजन कर्म है। जिससे वह अपने दुःखों को भुलाते है और कर्मशील जीवन में खुश रहते हैं। मेले के अवसर पर पादुकचाला नृत्य के गीत -

''काली रे कायलड़ी ते वन बगड़े ने गयी ती रे
वन बगड़ा मे रेती वनफल वेणी खाती रे....।''[31]

'मगरी मानगढ़' में पूजा का यह गीत आदिवासी लोगों को गमों को भुलाता हुआ सहारा प्रदान करता है तो दूसरी तरफ सभी को आनंद विभोर कर देता है -

''मारू देश ते रूपालू रे संकू सरवर
मारू देश के वाए भील देश सँकू सरवर।''[32]

इसप्रकार कहा जा सकता है कि आदिवासी समाज की संस्कृति बेहद रंगीन संस्कृति है। इसका संसार बड़ा विस्तार पाया हुआ है। जिसमें प्राकृतिक सौन्दर्य और प्रेम-नृत्य-गीत, मेलों में खिलता उत्साही जीवन, कलात्मक अभिव्यक्तियाँ, धार्मिक आस्थाएँ, मिथको मे रमती लोक गाथाएँ, सामाजिक संस्कारमय व्यवहार और क्रियाएँ, गणचिह्न, पहेली मुहावरे, जीवन की झांकी दिखाते खेल-कूद, मनोरंजन भरी अन्य क्रियाएँ, शिष्ट समाजों की भांति फुरसत के क्षणों में वस्तुएँ न भरने वाली यह संस्कृति सम्पूर्ण जीवन चर्या है जिसमें उनका आचरण, विश्वास, धर्म और मनोविज्ञान, सिद्धांव और परम्पराओं का साझासंगम, साथ ही मूल्य व्यवस्था से अपनत्व रखने वाली क्रियाशील सहज जीवन की भाव भरी भंगिमायुक्त अभिव्यक्तियाँ है।''[33] अतः बागड़ प्रदेश की सांस्कृतिक परम्पराओं व प्रकृति प्रेम आदि का चित्रण कमोवेश दोनों रचनाओं में मिलता है।

उपरोक्त विवेचन के उपरांत हम पाते है कि आदिवासी जीवन और विभिन्न क्रियाओं को आधार बनाकर लिखी दोनों पुस्तकों में कई स्तरों पर समानता है। वैसे तो एक ही विषय पर रचित दो रचनाएँ एक समान नहीं होती है। उनमें दृष्टि भेद का भी फर्क नजर आता है। यहां पर दोनों रचनाओं में लेखकों का नजरिया एक समान नहीं रहा कुछेक रचनों पर मोड़ आया है लेकिन अधिकांश स्तरों पर समान विषय वस्तु होने पर सहमत है।

जिन-जिन स्तरों पर दोनों रचनाओं में समानता दृष्टि गोचर होती है। वहां आवश्यक नहीं कि एक रचना से उल्लिखित समस्त घटनाएँ दूसरी कृति में भी हू-बू-हू मिले। अतः पूर्णतः समानता का दावा नहीं किया जा सकता है। क्योंकि विषय विवेचन में फर्क रहा है। केवल छायाभास दृष्टिगोचर होता है।

किन्ही रचनाओं में पूर्णतः समानता खोजना एक असफल प्रयास होता है। रचना चाहे किसी भी तरह की क्यों न हो? कुछेक स्तरों पर ही समानता होती है। एक ही विषय और एक ही विषयवस्तु पर केन्द्रीय विभिन्न रचनाओं में कई स्तरों पर असमानता परिलक्षित होती है। जिसके कई कारण हो सकते है। विषय वस्तु लेखक की अश्चेतना में समाहित होती है।जिसका जितना वह रचना में उल्लेख या चित्रण कर पाता वही उसकी अंतर्वस्तु कहलाती है। अब यहां यह स्पष्ट होता है कि प्रत्येक रचनाकार की रचना में हर एक अनुभूति स्थान पाती हो यह जरूरी नहीं है। अर्थात् रचनाकार द्वारा किसी रचना का सृजन करते वक्त उसकी कुछ सीमाएँ भी होती है।

प्रत्येक लेखक अथवा रचनाकार का स्वयं का कल्पनालोक होता है। जिसमें विचरण करते हुए अपने भावों और विचारों को यथार्थ से जोड़ने की पुरजोर कोशिश करता है। इसलिए कह सकते हैं कि केवल यथार्थ से भी रचनाएँ महान नहीं होती है। बल्कि इनके पीछे एक विचारधारा का होना आवश्यक है। चूंकि प्रत्येक रचनाकार स्वयं के स्तर पर एक सृजनकर्ता

भी होता है। अतः किसी भी विषय पर एक ही विषयवस्तु को लेकर लिखी गयी रचनाओं में विषमता होना स्वाभाविक है।

मानगढ़ के आदिवासी आंदोलन पर लिखित दोनों रचनाओं पर भी यही लागू होता है। मानगढ़ आंदोलन इतिहास भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है। लेकिन इतिहास के प्ररिप्रेक्ष्य में ओझल घटना है। जिस पर इतिहास मौन है। साहित्यकार इतिहास से विषय वस्तु लेता है। लेकिन इतिहास समत ही नहीं लिखता। भाव और विचार सम्प्रेषण हेतु कल्पना का योग भी आवश्यक जान पड़ता है। इसलिए साहित्यकार इतिहास परक घटनाओं को साहित्य के माध्यम से जगत के बीच लाने में काल्पनिक पात्रों का सहारा लेता है। जिसका उद्देश्य केवल सम्प्रेषण प्रक्रिया को बाधित होने से बचाना है। मानगढ़ पर घटित आदिवासी आंदोलन से संबंधित दोनों रचनाओं में विभिन्न स्तरों पर विभिन्नता है। यह भिन्नता विभिन्न स्तारिक संदर्भों में है जो इसप्रकार समझी जा सकती है।

ऐतिहासिक स्तर पर दोनों रचनाएँ मानगढ़ पर हुए आदिवासी आंदोलन और बलिदान की घटनाओं का जीवंत दस्तावेज है। फिर भी इसके निश्चित साक्ष्य अनुपलब्ध है। घटना-तिथि को लेकर करीब-करीब मतभेद ही दिखाई देता है। हरिराम मीणा अपने उपन्यास 'धूणी तपेतीर' मे यह घटना 17 नवम्बर 1913 ई0 को ठहराते है।''[34]

राजेन्द्र मोहन भटनागर, मगरी मानगढ़: गोविन्द गिरी में यही तिथि 7 दिसम्बर 1908 मानते है। चूंकि मानगढ़ आदिवासी आंदोलन इतिहास की दृष्टि में उपेक्षित रहा, इस घटना को उचित स्थान नहीं मिला। अतः विषमता साफ दिखाई देती है।

लेकिन ऐतिहासिक स्तर पर विवेच्य रचनाओं में तुलना करना थोड़ा कठिन-सा है। क्योंकि दोनों ही रचनाएँ साहित्यक है। दूसरी तरफ उस समय के पूर्णत: सही साक्ष्य उपलब्ध नहीं

हैं।बृजकिशोर शर्मा ने पुस्तक ज्तपइंस त्मअंसजे (आदिवासी विद्रोह) नामक पुस्तक लिखी। जिसमें उन्होंने यह घटना 17 नवम्बरए 1913 को मानी है। स्वं लेखक हरिराम मीणा जी ने मेवाड़ महाराणा पुस्तकालय, उदयपुर संग्रहलय, दिल्ली के संसदीय पुस्तकालय और दक्षिणी राजस्थान के स्थानीय निवासियों से मेल मुलाकात आदि साक्ष्यों के सहारे निर्णीत तिथि तर्क संगत ही दिखाई देती है। खैर इतिहास का विषय है बहस तो हो सकती है।

एक बात विशेष तौर पर कही जा सकती कि विवेच्य रचनाओं में घटनाएँ भिन्नता प्रदर्शित करती है लेकिन एक बात पर सहमति जताती है कि घटना का दिन मार्गशीर्ष पूर्णिमा था। बागड़ में यह मेला मागशीर्ष पूर्णिमा को भरता है। इसकी पुष्टि लोक संस्कृति करती है। क्योंकि मिथकों और लोकगीतों व लोकपर्वों में ऐतिहासिकता जिंदा होने का प्रमाण देती रहती है। इतिहास खूब जगहों पर मौन है लेकिन लोक वाचाल है। अतः इतिहास की मौन अवस्था का रहस्य लोक में प्रकट होता है। आज भी वह मेला मार्गशीर्ष पूर्णिमा को भरता है। भारतीय लौकिक संस्कृति मेले भरने तिथि आरंभ में भी आज भी वही है। क्योंकि वहां धार्मिक आस्था जुड़ी होती है और धर्म का जुड़ाव जनता की चितवृत्ति से है।

अतः कह सकते है कि 17 नवम्बर को मार्गशीर्ष पूर्णिमा था। इसलिए ‘‘धूणी तपेतीर’ ऐतिहासिक सिद्ध होती है।

‘धूणी तपेतीर’ उपन्यास का आरंभ गोविंद गुरु के बाल्यकाल से हुआ है।‘रास ने बाल्यावस्था को प्रारंभिक बाल्यावस्था नाम देकर उसे 6 वर्ष की आयु तक सीमा निर्धारित की है। वहीं अधिकांश मनोवैज्ञानिक बाल्यकाल को दो अवस्थाओं में बाटते है। पूर्ण बाल्यवस्था उसे 6 वर्ष तक और उत्तर बाल्यावस्था 6 से 12 वर्ष।’’[35] गोविंद गुरु अपने मित्रों के साथ जंगलों में बचपन में घुमक्कडी जीवन व्यतीत करते हैं से धूणी तपे तीर आरंभ हुआ। वहीं मगरी मानगढ़: गोविंद गिरी उपन्यास का आरंभ गोविंद गिरि के शैवावस्था से आरंभ किया। जन्म का समय मार्गशीर्ष पूर्णिमा बताया गया जबकि धूणीतपेतीर इस संदर्भ में मौन है।

धूणी तपेतीर उपन्यास में गोविंद गुरु को 'बेसर'[36]और 'लाटकी'[37] नामक दम्पति की संतान बताया गया। जबकि मगरी मानगढ़: गोविंद गिरि उपन्यास में दम्पति का नाम 'गणेश्या'[38] और 'सावंती'[39] के रूप में आया है।

'धूणी तपेतीर' में गोविन्द गुरु का आरंभिक नाम गोविंदा आया है जबकि 'मगरी मानगढ़: गोविंद गिरि' में गोविंदा।गोविन्द गुरु के नामकरण में 'धूणी तपेतीर' मौन है कि 'मगरी मानगढ़: गिविन्द गिरी' मं घुमक्कडी बाबा द्वारा नमोल्लेख हुआ है। हरिराम गीमाण 'धूणी तपेतीर' में गोविंद गुरु को अपने दीक्षा गुरु राजगिरी गोसाई व भारतीय महान समाज सुधारक दयानंद सरस्वती से प्रभावित होने का उल्लेख करते है। जिससे प्रभावित होकर स्वदेशी आंदोलन हिस्सेदारी में दिखाते है।

> **''दयानंद संत तो स्वदेशी की बात करते हैं फिर मैंने उनसे अगर कोई ज्ञान प्राप्त किया तो क्या में तुम्हारा बुरा करने वाला हूँ।''**[40]

जबकि मगरी मानगढ़: गोविंद गिरी' उपन्या समें भटनागर गोविंद गुरु को कबीर से सर्वाधिक प्रभावित मानते हे। गोविंद गुरु दयानंद सरस्वती से मिलकर आध्यात्म ज्ञान की चर्चा अवश्य करते है कि लेकिन स्वदेशी जैसी कोई विशेष बात नहीं।

'धूणी तपेतीर' उपन्यास में आदिवासी समाज में सुधार कार्यक्रम का क्रमिक विकास विभिन्न लोगों के माध्यम से दिखाने का प्रयास किया। दुर्लभराय जी, इनके समकालीन मावजी, आदि का उल्लेख यहां हुआ है। जबकि मगरी मानगढ़: गोविंद गिरि में इनका प्रमुख रूप उल्लेख नहीं किया गया।

'धूणी तपेतीर' में आपराधिक अधिनियम का लागू होने और उसके दुष्परिणामों का, भूमि बंदोबस्तीकरण का लागू करना, महाजनी सूढखोरी का खुला तांडव, रियासती रौब

दबाव ऋषभ देव और मंदिर समझौता, ब्राह्मणी संस्कृति से जकड़ते सामाजिक क्रियाकर्मों, आदिवासी समाजों के साथ डराकर, धमकाकर व फुसलाकर बहलाकर किये समझौता का उल्लेख हुआ है। जबकि मगरी मानगढ़ में इन विभिन्न गतिविधियों को न के बराबर चित्रित किया। जबकि आदिवासी समाजों की दुर्दशा के लिए यही गतिविधियां प्रमुख रूप से जिम्मेदार थी। गतिविधियों को बंद करने और खत्म करने के लिए आदिवासी आंदोलन हुए है ताकि वह अपने आदिम तरीकें से बिना किसी को हानि पहुंचाये आराम से जीवन यापन कर सके।

'धूणी तपेतीर' में विभिन्न आदिवासी समाजों का उल्लेख मिलता है। जैसे -

''हम सब लोग भील, मीणा, गारासिया हैं।''[41]

'अन्य समाजों का जिनमें घुमक्कड़ी प्रवृत्ति पायी जाती हैए का भी उल्लेख हुआ है।

कंजर, सांसी, कालबेलिया, पारधी, सिकलीधर, गाड़िया लुहार आदि अनेक मानव समूह है।''[42]

मगरी मानगढ़ः गोविंद गिरि' उपन्यास में उपरोक्त आदिवासी समुदायों का उल्लेख नहीं मिलता है। जबकि मानगढ़ आंदोलन में शेष को छोड़ भी दे तो भील, मीणा, गरासियां और डामोरों ने भाग लिया था। अतः कहा जा सकता है कि 'धूणी तपेतीर' उपन्यास ही ऐतिहासिक प्रमाणिकता की कसोटी पर खरा उतरता है।

'धूणी तपेतीर' उपन्यास के अनुसार ब्रिटिश अधिकारी वेलेसली के निर्देशन, नेतृत्त्व में मानगढ़ आंदोलन की मुख्य रणनीति तय कर इसे कुचला गया।जिसमें पीटरसन व जे.पी. स्टोक्ले उनके अन्य सहयोगी की भूमिका निभाते हैं तथा मानगढ़ पहाड़ी एकत्र आदिवासियों पर एक तयशुदा नीति के तहत आक्रमण करते है जिनमें आदिवासी उनका मुकाबला अपने

परम्परागत हथियारों से करते है जबकि मगरी मानगढ़: गोविंद गिरी उपन्याासस में अंग्रेजी सेना का नेतृत्व कर्नल शटन करता है और मानगढ़ पर एकत्र आदिवासियों पर गोलियां चलाने का आदेश फरमाता है। इस तरह घटना .तिथियो में विविधता आ गयी।

'सपसभा' के संबंध में दोनों रचनाओं में मतभेद है। मीणा इसका गठन का समय 1883 ई0 मानते है और मौलिकता के प्रश्न पर पूंजाधीरा को प्राथमिकता देते है जबकि भटनागर मोती गड़ामेड़तीया की मौलिकता पर ठप्पा लगाते है और नामकरण भी 'रुद्राक्ष सभा' से गति कर मोती गड़ामेड़तीया के साथ 'सम्य सभा' पर आकर रूक जाता है।

ऐतिहासिक एवं सामाजिक दृष्टि से मानगढ़ आंदोलन के प्रमुख आदिवासी प्रतिनिधि गोविंद गुरु अपने मौलिक स्वभाव में एक साधारण भक्त है। आदिवासी समुदाय को सम्मान के भर जीवने जीने के राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक व आर्थिक स्तर पर जागरुक करने का बीड़ा उठाते है। लेकिन कर्मशील जीवन में भक्त ही है।'धूणी तपेतीर' मं यही भक्त स्वरूप चित्रित हुआ है। जबकि मगरी मानगढ़: गोविंद गिरि में गोविंद गिरी अपने भक्त स्वरूप के साथ एक धीर ललित नायक भी है।

''वाह बदली, वाह! एकदम बिजली सी चमकती घटा ठिठोली भरा अंदाज।''[43]

बदली को पहली मुलाकात से ही गोविंद गुरु बदली के होकर रह गये दूसरी बार उठाला माता के थान पर लड़कियाँ के नाच में से बदली को पहचाना और वार्तालाप की। उसी दौरान उनकी दृष्टि का फेर हो जाता है - क्योंकि

''उसकी दृष्टि बार-बार वहीं जाकर टिकती थी। जहां से उरोजों का तनाव कुछ ढीला पडा था और बिजली की चमके कौंध रही थी।''[44] दोनों रचनाओं में नायक के नाम पर भी विषमता है 'धूणी तपेतीर' उपन्यास के नायक का नाम गोविंद गुरु है तो मगरी मानगढ़: गोविंद गिरि उपन्यास के नायक का नाम 'गोविंद गिरि' है जबकि इतिहास के संदर्भ में गोविंद गिरी है।

दोनों रचनाओं में वागड़ प्रदेश के आदिवासी समाज का चित्रण हुआ है जिसमें विशेषकर भील समुदाय का। दोनों रचनाएँ सामाजिक चित्रण में विविधता लिए हुए है। हरिराम मीणा आदिवासी समाज में व्याप्त बुराइयों का करते हैं। आदिवासी समाज की सबसे बड़ी कमजोरी नशाखोरी है जिससे वह अपने आप को गिरा लेता है। कुरिया दनोत और गोविंद के मध्य शराब को लेकर हुए वार्तालाप से स्पष्ट होता है कि शराब के सेवन घर-परिवार में आर्थिक कमजोरी के साथ-साथ अशांति का वातावरण बन जाता है। कुरिय का कथन

> **''डोकरा नशे में जब रोड़ा करता है तो घर-परिवार का**
> **क्या हाल होता है, यह तो मैं ही जानता हूँ। मुझसे तो**
> **वह ढाल पर नहीं आता।''**[45]

मगरी मानगढ़: गोविंद गिरि मे यह तथ्य इतना स्पष्टता से नहीं उभारा गया कि बल्कि गनी के माध्यम से इतना ही कहा गया है कि लड़का शराब पीने वाला नहीं होना चाहिए।

डायन प्रथा वागड प्रदेश में आदिवासी समाज में प्रचलित एक अभिशाप था। जिसे अंगरेजी सरकार ने प्रतिबंधित किया। इस प्रथा का उल्लेख केवल धूणी तपेतीर उपन्यास में ही हुआ है। मगरी मागनढ़: गोविंद गिरि में नहीं। धूणी तपेतीर में गोविंद गुरु आदिवासी क्षेत्रों में धूम-धूमकर जागरती का कार्य जिलाए रखते है लेकिन दूसरी रचना में यह कार्य बेहद कमजोर स्थिति में उभरा है। अंग्रेजी सरकार द्वारा उपाधित 'इण्डियन राबिन हुड' 'टंट्या मामा' का वृतान्त केवल धूणी तपेतीर में ही उल्लिखित है। आदिवासी समाज फुरसत के क्षणों में एक स्थान पर एकत्र होकर लोक गाथाओं से मन बहलाते और हल्कापन महसूस करते हैं इसका जिक्र भी केवल धूणी तपेतीर' में हुआ है। विधवा गनी से गोविंद गुरु दूरा विवाह करते है। जबकि मगरी मानगढ़: गोविंद गिरि की गनी कौमार्य युक्त है। अतः विधवा विवाह का समर्थन केवल धूणी तपेतीर उपन्यास ही करता है।

सोमा भक्त की बेटी अणती और पांच्या की बेटी दल्ली का बलात्कार उस वक्त से लेकर आज भी उतनी ही प्रासांगिक घटना है। दोनों को थानेदार गुल मोहम्मद को और सुबेदार लियाकत अली जैसे कुकर्मीयों को कभी क्षमा नहीं करता। दोनों अति प्रासंगिक घटनाओं का वर्णन केवल 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में ही है।

'धूणी तपेतीर' में बेगार प्रथा का भी उल्लेख हुआ है। जिसे आदिवासी समाज अपने अनपढ़पन और अज्ञानता के कारण पुरखो द्वारा प्रायोजित और समर्थिक मानकर चलते है। जिसकी ओट में सत्ता और उस से संबंधित वर्ग समुदाय उनका शोषण करते है।गोविंद गुरु जगह-जगह घूम.घूम कर इसके प्रति सचेत करते हैं तथा कभी-कभी मौका मुआना भी कर लेते है। मगरी मानगढ़ में भी इसका चित्रण व इसके दुष्परिणाम इतने खुलकर मुखरित नहीं होते हैं।

आदिवासी प्रमुखतः आदिदेव भोलेनाथ के भक्त है। दोनों रचनाओं में समान रूप से भोलेनाथ की पूजा.आराधना का जिक्र हुआ है। धूणी तपेतीर में आदिवासी समाज को अपने देवों को पुकारते मानते चित्रित किया है। मगरी मानगढ़ में पौराणिक कथा भक्त प्रवर प्रहलाद और हिरण्यकश्यप का उल्लेख हुआ है। साथ दादू दयाल और भक्त कवयित्री मीरां का भी उल्लेख हुआ है जबकि धूती तपेतीर मे इनका उल्लेख नहीं हुआ है।धूणी तेपे तीर में भूत-प्रेम विद्या और इन्द्रजाल विद्या के संदर्भ मेंबातें हुई है। गोविंद गुरु अपने प्रवचनों में तुलसी समर्थिक 'दया धर्म को मूल' का समर्थन करते है कि जबकि मगरी मानगढ़ में गोविंद कबीर के दोहों का अत्याधिक उपयोग करते हैं।

गोविंद गुरु द्वारा रचित भजन का भी उल्लेख हुआ है -

''जाबु जागों तरेह ने आजन वाज-बाग है
जाबु में हकारों पड़ है ने आजन बाग है''[46]

मगरी मानगढ़ में गोविंद गुरु द्वारा कोई भजन रचने का उल्लेख नहीं हुआ। गन्नी भजन गाती है। यह इसकी अनूठी विशेषता है जो धूणी तपेतीर नहीं है। यह लेखक की कल्पना हो

सकती है। आदिवासी समुदाय के एक औरत का गाना उस वक्त की परिस्थितियों के प्रतिकुल जान पड़ता है।

विवेच्य रचनाओं में राजनैतिक स्तर पर विषमता है। क्योंकि दोनों रचनाओं की घटनाओं में भिन्नता प्रदर्शित है साथही घटना तिथि में भी। इसी कारण राजनैतिक स्तरपर कई मोड़-पड़ावों का उल्लेख हुआ हे। हरिराम मीणा के उपन्यास 'धूणी तपेतीर' के तत्कालीन शासकों का उल्लेख हुआ है। मेवाड़ महाराणा फतह सिंह, बांसवाड़ा के महारावल लक्ष्मण सिंह, शुंभूसिंह, प्रतापगढ़ केमहारावल उदयसिंह, रधुनाथसिंह व विजयसिंह, डुगरपुर महारावाल विजय सिंह, उदयपुर महाराणा सज्जन सिंह जागदीदारों में हिम्मत सिंह (गूढ़ा), ठाकुर पृथ्वीसिंह (इंडररियासत) आदि शासकों व जागदीरों का उल्लेख हुआ है। साथ ही राजस्थान के महान इतिहासकार कविराजा श्यामल दास का भी जिक्र हुआ है।

'मगरी मानगढ़ में भी तत्कालीन सताधीशों का उल्लेख हुआ है। डूंगरपुर राज्य के शासन को संभालने हेतु अधिकृत कार्यवाहक राजमाता व अल्पवयस्क महारावल विजय सिंह, शासन सलाहकार के रूप में नरपत सिंह, बांसवाडा शासक शुंभू सिंह, महामंत्री नाहर सिंह, उपसेनापति देवी सिंह, जयसिंह आदि का उल्लेख हुआ है'।[47]

बागड़ प्रदेश के आदिवासियों का कई तरह से शोषण किया जाता है। जिनका उद्घाटन उक्त रचनाओं में भिन्न-भिन्न रूपों में हुआ है। मगरी मानगढ़ में पाठशालाओं के बंद कराने का उल्लेख हुआ है। धूणी तपेतीर में धूणियों को मांस-मदिरा से अपवित्र करने की घटनाएं सामने आती है।

आदिवासी समाज पर शताब्दियों से शोषण का भार डाला हुआ है। रेलगाडी के लाइन बिछाने के कार्य में आदिवासी समाजों की जमीन से बेदखल किया। उसी के समानान्तर 'राज की गैल' की बात सामने आयी। आदिवासी समुह महाराणा सज्जन सिंह के सम्मुख

कहते है। जागीदरों के नाई द्वारा हमारे बुजुर्ग लोगों के सिर उस्तरा लगाकर दो अंगूल चैडी पट्टी बना दी जाती है। पूछने पर उसे राज की गैल बताते है। इस गैल पर तो कोई चल भी नहीं सकता।

"... नाई बालों को ललाट से निचे से चोटी तक दो दो अंगुल की चौडाई में उस्तरा लगा कर कटते हैं।पूछने पर कहते हैं की यह राज की गेल है।"[48]

दोनों रचनाओं में वागड़ प्रदेश की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति खुलकर व्यक्त हुई। आदिवासी समाज द्वारा मनाये जाने वाले विभिन्न त्योहारों व मेलों का उल्लेख हुआ है। विभिन्न गीतों का संयोजन धूणी तपे तीर के उपन्यास व मगरी मनगढ रूगोविन्द गिरि में स्पष्ट रूप से हुआ है दिखाई देता है। जैसे -

1. ''काली कोयलडी ते वन बगडे ने गायी ती रे।''[49]
2. ''डूबे रे काजली चुवी चुवी जाय।''[50]
3. ''हूँ..... ऐ..... ही..... डो''[51]
4. ''होली बाई वांहो रो रे।''[52]
5. ''हरिया बाई बाहो रो रे।''[53]
6. भाईया थूर वाजी रे जी कानहैग डुरमाल रे।''[54]

इसप्रकार विभिन्न प्रकार के लोकगीतों का उल्लेख हुआ है। इन गीतों के साथ-साथ आदिवासी समाज के विभिन्न नृत्यों का नामोल्लेख हुआ है -

''हाथजोड़िया पगपासणियाना, जालणियाना, उडविमाना, पादुकचाला, मुरिया, गैर-गवरी आदि।''[55]

गवरी नृत्य पुरूषों द्वारा किया जाता है जबकि उडणियाना नृत्य में केवल युवतियाँ ही भाग लेती है। जबकि मूरिया नृत्य सामूहिक नृत्य है जिसमें युवक युवतियाँ एक दूसरे के हाथों को थाम कर नाचते है और विभिन्न करतबों का आयोजन होता है।

मगरी मानगढ़ में भी लोकगीतों का उललेख हुआ है। लेकिन इनका इतना मोहक चित्रण नहीं हुआ।

भाषा पक्ष

'धूणी तपेतीर' उपन्यास में लेखने ने अपनी कथा विस्तार हेतु विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया है। विशेष रूप से कथा शैली का सबसे अधिक उपयोग हुआ। कथावस्तु का गतिमान व पाठकों को जोड़े रखने के लिए विभिन्न लोक कथाओं का संयोजन किया गया। मेगड़ी विवाह सृष्टि निर्माण की कथा, लाखा बनजारा की कथा हीडा की कथा, राणा दीवाण और जेलूनार की कथा आदि कथाओं के कहने के लिए लोक शैली का पक्ष लिया गया। गजब का प्रकृति चित्रण है।

'धूणी तपेतीर' उपन्यास में बिम्ब परक शब्दावली का भी प्रयोग हुआ है। एकउदाहरण

''बरगद के वृक्ष की तरह गोविंद गुरु का व्यक्तित्व विकसित हुआ।संप सभा की बैठक रूपी टहनियों पर भगत व अन्य अनुयायी रूपी पते फैलते गए।''[56]

रामगोपाल के अनुसार 'भाषिक स्तर पर 'धूणी तपेतीर उपन्यास ने हिन्दी उपन्यास के लिए भावी संभनाओं के द्वारा खोले है।[57] लेखक विभिन्न स्थलों और स्तरों का ध्यान में रखते हुए उचित भाषा का प्रयोग किया। पात्र और देशकाल के अनुकूल ही भाषा का प्रयोग हुआ है। जैसे डोकरा, बाट, गमेती, हेला, सौण टीपना आदि स्थानीय शब्दावली का प्रयोग हुआ है। साथ ही उर्दू फारसी शब्दों का प्रयोग किया। मार्फत, मुताबिक, चुनिंदा, जवानी, तयशुदा, दिलो-दिमाग, वजह, इलाके, सहूलियत, पसंद, लिहाज आदि।

भाषा पर लेखक का अचूक अधिकार सा दिखाई देता। कहीं कहीं पत्रकारिता युक्त भाषा का प्रयोग हुआ है जो ऐतिहासिक घटनाओं के ब्यौरे प्रस्तुत करते वक्त दिखाई देता है। सम्प्रेक्षण में सहूलियत रहे इसलिए कही कही फुटनाटे भी दिए है। गीतात्मक शैली का प्रयोग हुआ। साथ ही लोकोक्तियों व मुहावरों का प्रयोग भी हुआ है। जैसे- पो फटने से पहले ही, फूट-फूट कर रोना, सीधी अंगूली से घी नहीं निकलना।

इस प्रकार धूणी तपेतीर उपन्यास में भाषा में सहज-सरलता के साथ नजाकत-नफासत झलती है। अर्थ सम्प्रेण आसानी से हो जाता है। संवाद उत्तम कोटी के हैं।

मगरी मानगढ़: उपन्यास में लेखक ने विभिन्न शैलियों से घटनाओं का ताना-बाना-बुना है। विशेष रूप से कथा शैली का सहारा लिया गया है। भाषा पात्रानुकूल है। गोविन्द गुरु आदिवासियों के आदर्श नायक होने के साथ रसिक नायक है। इसलिए बदली और गनी के साथ रसिक प्रेमालाप भी हुआ है। स्थानीय भाषा का खुला प्रयोग है। जैसे -

'ये म्हारा मण इती जल्दी समझ गया क्यों?''[58]

दूसरी तरफ रसिक प्रेमभरा वार्तालाप होता है जब उनकी दृष्टि बदली का नाभी पर जा अटकती है जहां उसका घाघरा नाभी से थोडा नीचे बंधा हुआ था वह बोला उठते है

''**ना-ना बदली**, **म्हारे कूँ थे ऐसा मत समझा**''[59]

लेखक ने अंग्रेजी अधिकारियों की भाषा अंग्रेजी ध्वनि से प्रभावित दिखाई है - 'टुम्हारा ये हवन .... धाँणी यज्ञ ढोंग है।टाकिटुम भील राजा बनकर यहाँ हुकूमट कर सको।''[60]

उपन्यास में स्थानीय अथवा आंचलिता युक्त शब्द प्रयोग अधिक किए है। जैसे थान, चबूतरा, डगर, म्हारा, ओवरा, घणी आदि के साथ मुहावरों व लोकोक्तियों का यथा स्थान पर प्रयोग हुआ है। सब अपनों-आपणों हवा रथा हारा ताके है, आज वार है तो काले कवार भी है,

एक सौ एक नुक्स निकालना, आसमान के तारे माँगना आदि उपन्यास में अंग्रेजी शब्दों का खूब प्रयोग हुआ है -

''यू डू नाट यू वरि.... प्लीज रिमैबर दि ट्रुथ विल सर्टेलि कम आउट सून आफ लैटर?''[61]

मानगढ आंदोलन पर आधारित दोनों रचनाओं के विवेचनोपरांत हम पाते है कि साम्यअधिक वैषम्य कम है। लेकिन ऐतिहासिक कथावस्तु होने के नाते 'धूणि तपेतीर' अपने स्तर पर ज्यादा घटनाओं को समेटे चलता है। लोक साझी संस्कृति का चित्रण अधिक हुआ वहीं ऐतिहासिकता पर भी खरा उतरता है। फिर भी दोनों रचनाएँ अपने-अपने स्तर पर महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। यहां कुछेक पहलुओं का आधार बनाकर विवेचन किया गया बशर्ते एक अलग ही पुस्तक इस विषय को लेकर लिखी जा सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. मीणा, हरिराम, धूणी तपेतीर, साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली, सं0 2013, पृ0 162
2. भटनागर, राजेन्द्र मोहन, मगरी मानगढ़, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं0 2011, पृ0 215
3. शर्मा बृजकिशोर, आदिवासी विद्रोह, पांइटर प्रकाशन जयपुर, सं0 2008, पृ0 119
4. मीणा हरिराम, धूणी तपेतीर, साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली, सं0 2013, पृ0 28
5. भटनागर, राजेन्द्र मोहन, मगरी मानगढ़, वाणी प्रकाशन, दिल्ली सं0 2011, पृ0 20
6. मीणा हरिराम, धूणी तपे, तीर साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली, सं0 2013, पृ0 152
7. भटनागर, राजेन्द्र मोहन, मगरी मानगढ़, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं0 2011, पृ0 206
8. मीणा, पिन्टु कुमार, मानगढ़ आंदोलन केन्द्रीत हिन्दी साहित्य, अलख प्रकाशन जयपुर, सं0 2013, पृ0 83
9. भटनागर, राजेन्द्र मोहन, मगरी मानगढ़, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं0 2011, पृ0 209
10. वही, पृ0 157
11. मीणा, हरिराम, धूणी तपेतीर, साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली ,सं0 2013, पृ0 345
12. भटनागर, राजेन्द्र मोहन, मगरी मानगढ़, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं0 2011, पृ0 26
13. गुप्ता, रमणिका, आदिवासी लेखन एक उभरती चेतना, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, सं0 2013, पृ0 16
14. मीणा, हरिराम, धूणी तपे,तीर साहित्य उपक्रम समिति ,दिल्ली ,सं0 2013, पृ0 26
15. वहीं, पृ0 105
16. वही, पृ0 108
17. भटनागर, राजेन्द्र मोहन, मगरी मानगढ़, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं0 2011, पृ0 98
18. मीणा, हरिराम, धूणी तपेतीर साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली, सं0 2013, पृ0 70
19. वही, पृ0 70

20. वही, पृ0 70

21. भटनागर, राजेन्द्र मोहन, मगरी मानगढ़, वाणी प्रकाशन, दिल्ली सं0 2011, पृ0 39

22. वही, पृ0 39

23. वही, पृ0 50

24. मीणा, हरिराम, धूणी तपे,तीर, साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली सं0 2013, पृ0 34

25. भटनागर, राजेन्द्र मोहन, मगरी मानगढ़, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं0 2011, पृ0 51

26. मीणा, हरिराम, धूणी तपेतीर, साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली, सं0 2013, पृ0 245

27. भटनागर, राजेन्द्र मोहन, मगरी मानगढ़, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं0 2011, पृ0 121

28. वही, पृ0 124

29. अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की परिभाषित शब्दावली (उद्धत), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं0 2016, पृ0 282

30. मीणा, पिंटू कुमार,मानगढ़ आन्दोलन कन्द्रीत हिंदी साहित्य, अलख प्रकाशन जयपुर,सं. 2013, पृष्ट 87, 88

31. मीणा, हरिराम, धूणी तपेतीर,साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली, सं0 2013, पृ0 204

32. भटनागर, राजेन्द्र मोहन, मगरी मानगढ़, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं0 2011, पृ0 129

33. वी. कृष्ण व भीमा सिंह (संपादक): आदिवासी विमर्श, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, सं0 2014, पृ0 सं0 90

34. मीणा, हरिराम, धूणी तपेतीर, साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली ,सं0 2013, पृ0 357

35. अनिल गुप्ता (सं0), शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार, कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा, पृ0 70-71

36. मीणा, हरिराम, धूणी तपे,तीर साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली, सं0 2013, पृ0 24

37. वही, पृ0 24

38. भटनागर, राजेन्द्र मोहन, मगरी मानगढ़, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं0 2011, पृ0 12

39. वहीं, पृ0 12

40. मीणा, हरिराम, धूणी तपेतीर, साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली, सं0 2013, पृ0 82

41. वही, पृ0 80

42 वही, पृ0 115

43. भटनागर, राजेन्द्र मोहन, मगरी मानगढ़, वाणी प्रकाशन, दिल्ली,सं0 2011, पृ0 54

44. वही, पृ0 92

45. मीणा, हरिराम, धूणी तपेतीर, साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली,सं0 2013, पृ0 29

46 वही, पृ0 229

47. मीणा, पिन्टु कुमार, मानगढ़ आंदोलन केन्द्रित हिन्दी साहित्य, अलख प्रकाशन, जयपुर 2013, पृ0 93

48. मीणा, हरिराम, धूणी तपेतीर ,साहित्य उपक्रम समिति, दिल्ली, सं0 2013, पृ0 49-50

49 वही, पृ0 204

50 वही, पृ0 251

51 वही, पृ0 282

52 वही, पृ0 321

53. वही, पृ0 342

54. वही, पृ0 143

55 वही, पृ0 204

56. वही, पृ0 374

57 मीणा, रामगोपाल, हिंदी संवाद सेतु पत्रिका, अप्रैल-सितम्बर, पृ0 42

58 भटनागर, राजेन्द्र मोहन, मगरी मानगढ़, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं0 2011, पृ0 91

59 वही, पृ0 92

60 वही, पृ0 209

61. वही, पृ0 196

उपसंहार

वर्तमान युग सुचना प्रौद्योगिकी का युग है जिसने समूची दुनिया को एक स्थान पर समेट लिया है। जहाँ उत्तर आधुनिक विमर्श और मीडिया इसके आधार स्तम्भ बनकर उभरे है। वहीं हिंदी भाषा और साहित्य में हाल के दशकों में कई आधुनिक विमर्शों ने अपना आरंभिक स्थान थोड़ा प्रभावशाली बनाया है। जिनमें स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, किन्नर विमर्श, किसान विमर्श,और दक्षिणी भारत में पारिस्थितिकी विमर्श प्रमुख रूप से उभरे हैं। ये विमर्श साहित्य पढ़ने और समझने की नई सोच,दिशा और दृष्टी देते है। विषय क्षेत्र से यह विमर्श समानता, स्वतंत्रता अभिव्यक्ति की आजादी, और अपने अधिकारों के प्रति सचेत करते हैं। व्यक्ति अथवा समुदाय की अस्मिता और अधिकारों के संघर्ष को स्पष्ट करते है। परिणाम यह हुआ कि हाशिए में गिने जाने लोगों ने केंद्र में अपनी उपस्थिति दी और प्राचीन कुप्रथाओं और रूढ़ मानसिकता से उभर कर स्वम् और समाज को नई दिशा और दृष्टि दी। प्रेमचंदीय विचरों में कहा जा सकता है कि पुराणी बीती गुजरी बातें आनुभाविक चोटे देती हुई कल्पनामय होकर साहित्य सृजन में परिणत हुई है।

'धूणी तपे तीर' में अभिव्यक्त आदिवासी आन्दोलन एक पूर्वनियोजित, संगठनमयी योजना का प्रतिफल था। जिसे इतिहास के पृष्ठों में तोड़ मरोड़कर छिपाने का प्रयास किया गया। राजस्थान के महान इतिहास लेखक पं. गौरीशंकर हिराचंद ओझा ने यह कह कर पल्ला झाड़ दिया कि मानगढ़ पर इक्कठे होकर उत्पात मचाते भीलों की गोलियां चलाकर शांत करना पड़ा। जिसमें कुछ लोग मरे गये। जबकि मरने वालों की संख्या करीबन एक हजार पांच सो तीन हजार के मध्य थी। जबकि इतिहास इन तथ्यों को 'कुछ'की संख्या तक ही सीमित कर देता है| इस से बड़ी और विडम्बना क्या हो सकती है ? इस घटना से सम्बन्धित विभिन्न साक्ष्य अभिलेखीय और लोकपक्षीए प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में उपलब्ध रहे। लेकिन आज

तक लेखकों और साहित्यकारों ने अपनी विमुखता बरती। हरीराम मीणा ने इस विद्रोह से सम्बन्धित विभिन्न पर्याप्त साक्ष्य एकत्र किये। प्रस्तुति हेतु मजबूत जमीन तैयार की। जहाँ अपनी खोजी और संतुलित दृष्टि का परिचय देते हुए इन तथ्यों का बड़े जतन के साथ संयोजन किया। जहाँ आदिवासी समाज की सभ्यता और संस्कृति के साथ-साथ उनके धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक आदि स्तरों को संश्लेषण-विश्लेष्ण कर एक नई और मुकम्मल पहचान दी है।

लेखक ने ऐतिहासिक तथ्यों के उजागर के साथ ही इन्हें सृजनात्मक आख्यान में ढाला है। जिसमें कल्पना का योग है। जिससे रचना में सृजनशील ऐतिहासिकता में रोचकता आई है। एक नया दृष्टीकोण हमारे सम्मुख उपस्थित होता है। आदिवासियों के भोलेपन को राजा की गैल के माध्यम से उनके प्रेमी जीवन को कमली और नंदू के प्रेम के माध्यम से राजशाही जीवन को अंग्रेगी सरकारऔर मेवाड़ दरबार के विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से और सेना से जुड़े कार्यों को मेवाड़ भील कोर्प्स को रायफल देने के माध्यम से दिखाने का प्रयास किया है।

विस्तृत फलक पर फैले चारित्रिक गठन और विस्तार भी बड़ा संयोजित और लालित्य युक्त है। उपन्यास के नायक गोविन्द गुरु के चरित्र को लेखक ने कल्पना का सहारे उत्कृष्टता प्रदान की। उनके बचपन के भ्रमणशील व्यक्तित्व को विस्तार दिया। जो आगे जाकर आदिवासी जीवन का पर्या-सा बना गया। बालक गोविन्द अपनी सच्ची लगन और मेहनत को इस भांति क्रमश:विकसित करता है कि गोविन्द से गोविन्द गुरु बन जाते है। कुरिया और पूंजाधीरा जैसे पत्रों के सहारे कल्पना लोक में विचरण करता सामाजिक सुधार का बिगुल बजता है। नशामुक्ति और शाररिक स्वच्छता सम्बन्धी कार्यक्रम उनके सामाजिक सुधार को गति देते है। विधवा विवाह को स्वीकार करते उनके क्रांतिकारी जीवन में कुछ पड़ाव है। जिनसे उनके व्यक्तित्व में रंगत आ गई।

मेलों का आयोजन,वहां के संगीन कार्यक्रम,परस्पर प्रेमाकर्षण,पंचायती निर्णय और कभी उसके विरुद्ध प्रेमी युगल का निर्णय आदि उनकी सांसकृतिक चेतना को स्पष्ट करते है। चौपालों पर बैठकर चिलम पीते लोक कथों का गायन-वाचन 'वसुधैव कुटुम्बकुम' को चरितार्थ करते है। अत: कह जा सकता है कि विभिन्न प्रकार के लोक गीतों,लोक नृत्यों,लोक गाथाओं,मिथकीय कथाओं के में विश्वास करते आदिवासी जीवन के सांस्कृतिक पक्ष को संबल मिला है। लेखकीय दृष्टी जो ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विकास को गति देती है और लक्ष्य भेदी हो जाती है।

हिंदी की आंचलिक रचनाओं की भांति यहाँ भौगोलिक और प्रकृतिपरक दृश्य विधानों का अभियोजन हुआ है। आदिवासी समाज की परम्परागत निवास-पद्धती के चित्रण को भी परिलक्षित करतें है। इन बेजोड़ गुम्फित नमूनों का हृदयी स्पर्शी चित्रांकन बहुत कम रचना में संयजित हो पाता है। जो इस उपन्यास की अपनी अनूठी विशेषता है। वर्तमान राजस्थान के दक्षिणांचल और अन्य राज्यों से सटे निकटवर्ती स्थानों की प्राकृतिक और भौगोलिक दृश्य अपनी समग्रता में मौजूद है। यहाँ के पहाड़ी-घाटियों, नदी-नालों आदि का चित्रण लेखक की सूक्ष्म पर्यवेक्षण-विश्लेक्ष्ण दृष्टी का परिचय देते है। प्रकृति के साथ मानव जीवन का अभिन्न संबंध है। इसलिय नदी -नाले, धरती-आकाश, पहाड़-वृक्ष, चाँद-सूरज की धुप- छाहीं में रमते बादल-वर्षा मानवीय हंसी-ख़ुशी और सुख-दुःख के साथ अविछिन्न रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित होते है। जहाँ प्रकृति आदिवासी जीवन के साथ कभी मुरझाती तो कभी निखरती दिखाई देती है।

'धूणी तपे तीर' और 'मगरी मानगढ़ :गोंविद गिरी का तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि हरी राम मीणा ने गोंविद गुरु की छवि एक संगठनकर्ता के साथ-साथ एक लोक चिंतक के रूप में भी उपस्थित की है। जो राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और मानव समज से जुड़े अन्य पक्षों, जिनमें प्राकृतिक मुद्दे भी सम्मिलित हैं, से प्रभवित होतें हैं

और उन्हें प्रभावित करते हैं और उनके उन्नयन हेतु गिरफ्तार होने तक प्रयास करते रहते है। राजेंद्र मोहन भटनागर ने लोक चिंतक के साथ-साथ बदली और गन्नी के साथ उनका प्रेम सम्बन्ध जोड़ कर उनका लोकरंजक रूप भी प्रस्तुत किया है। जो की उन के व्यक्तित्व के साथ असहज महसूस होता है। निष्कर्षत: कह सकते हैं की 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में आदिवासी आन्दोलन की अभिव्यक्ति हुई है।

पारिभाषिक शब्दावली

धूणी	-	यज्ञ और पूजा स्थल
फलियाँ	-	गाँव से बहार बसे आदिवासी परिवारों दस बारह झौपड़िया
पल	-	आदिवासी अंचलों में छितरे गाँव-समूह को पाल कहते हैं।
गैले	-	रास्ते
आंकड बोली	-	कठिनता से समझ में आने वाली
थम्म	-	होली जलाने के लिए रोपी रोपी जाने वानी मध्य की गीली लकड़ी।
जौण	-	शरीर बदलना (पुनर्जन्य के बिना नया शरीरा प्राप्त करना)
आभिजात्य वधु	-	सम्पन्न परिवार की वधू
सप्त ऋषि	-	पौराणिक ग्रंथों के अनुसार आकाश में विराजितसात ऋषियों का समूह
मिनख	-	मनुष्य
बाट	-	रास्ता
गमेती	-	आदिवासी मुखिया
हेला	-	आवाज देना
डोकरा	-	वृद्ध व्यक्ति
चौमासा	-	वर्ष ऋतु
कडीली	-	तवा
धूमल	-	युद्ध करना अथवा दुश्मन पर वार
सौण	-	सगुन
टीपना	-	पंचाग
सुस्ता	-	खरगोश
डील	-	शरीर
नतण्या	-	रोटी ले जाने का कपड़ा
साँझ	-	सांयकाल
हुंकारा	-	सहमती

छोरी	-	लड़की
जुगाड़	-	व्यवस्था
छपकी	-	छीटे मारना
म्हारे	-	मेरा
थारे	-	तुम्हारा
मण	-	मन
सांद	-	चाँद
देवरे	-	लोक देवी - देवता का मंदिर
ढेलबांस	-	ढेला फेंकने की रस्सी
रुपालू	-	सुंदर
मारू	-	दृहमारा
अच्छर	-	अक्षर
ओंरों	-	अन्य
भूरेटीय	-	अंग्रेज
जंगलात महकमा	-	वन विभाग
फौजी दस्ता	-	सैनिक टुकड़ी
नवाजना	-	सम्मनित करना
सुल्फी	-	चिलम
बालम	-	पति
बेणेश्वर	–	सोम माहि जाखम नदियों के संगम पर स्थित आदिवसियों का तीर्थ स्थल (कुंभ)
कुण	-	कौन
पाल	-	आदिवासी गावों का समूह
खाट	-	रस्सियों से बुना सोने या लेटने का साधन
मूंज	-	वानस्पतिक घास से बनी रस्सी
ढलना	-	निकलना ,बीतना
इकटक	-	लगातार
पुरखों	-	परम्परा से

संदर्भ ग्रंथ-सूची

आधार ग्रंथ

- मीणा, हरिराम, धूणी तपे तीर, साहित्य उपक्रम समिति, लक्ष्मी नगर , नई दिल्ली-110092, सं. 2016
- भटनागर, राजेंद्र मोहन, मगरी मानगढ़ : गोविन्द गिरी, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, सं. 2011

संदर्भ ग्रंथ

- अटल, योगेश एवं सिसोदिया, यतीन्द्र, आदिवासी भारत, रावत पब्लिकेशन, जवाहर नगर, जयपुर-302004, सं. 2011
- अमरनाथ डॉ.(सं.) , हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002 सं. 2009
- अवस्थी, रेखा, प्रगतिवाद और समांतर साहित्य, मेकमिलन प्रकाशन, कालका मंदिर के पीछे, नई दिल्ली-110002, सं. 2003
- उप्रेति, हरिश्चंद्र, भारतीय जनजातियां : संरचना एवं विकास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर-302004, सं. 2013
- ओझा, पं. गोरीशंकर हीराचंद, प्राचीन राजस्थान का इतिहास, ग्रंथागार, सोजती गेट, जोधपुर-342001, सं. 2015
- कुमार, अरुण, उदारीकरण एवं भूमंडलीकरण एवं दलित, रावत पब्लिकेशन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, सं.2009
- कुमार राधा, स्त्री संघर्ष का इतिहास, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, सं. 2009
- खेतान, प्रभा,उपनिवेश में स्त्री, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, सं. 2003

- गुप्ता, रमणिका (सं.), आदिवासी लोक यात्रा, शिल्पायन, शाहदरा, नई दिल्ली-110032, सं. 2006
- गुप्ता, रमणिका (सं.), अदिवासी साहित्य यात्रा, राधाकृष्णन प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली-110002, सं. 2008
- गुप्ता, रमणिका (सं), आदिवासी कौन, रमणिका फाउंडेशन, वजीर नगर, नई दिल्ली-110003, सं.2008
- गुप्ता, रमणिका (सं.), आदिवासी स्वर और नई शताब्दी, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, सं.2002
- गुप्ता, रमणिका (सं.), स्त्री विमर्श, शिल्पायन, शाहदरा, नई दिल्ली-110032, सं. 2006
- गुप्ता, मोहनलाल, उदयपुर संभाग जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, ग्रंथागार, सोजती गेट के बहार , जोधपुर-342001, सं. 2009
- गुप्ता, रमणिका, आदिवासी लेखन एक उभरती चेतना, सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 सं.2013
- गुप्ता, शोभालाल, भील क्रांति के प्रणेता, मोतीलाल तेजावत, राजस्थान साहित्य अकादमी, हिरनी मगरी उदयपुर-313001, सं.1985
- चन्द्र, सुभाष, दलित मुक्ति आन्दोलन, आधार प्रकाशन, सेक्टर-16, पंचकुला-313313, सं. 2010
- चंद, विपिन, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन, निदेशालय, नई दिल्ली, सं. 2015
- जैन, श्रीचंद, बनवासी भील और उनकी संस्कृति, ग्रंथागार, सोजती गेट के बहार, जोधपुर- 342001, सं.2003
- जैन, संतोष कुमारी, आदिवासी भील मीणा, यूनिक ट्रेडर्स, चौड़ा रास्ता, जयपुर-302003, सं.2001

- जोशी, श्रीमती करुणा, जनजातीय क्षेत्र में स्वतंत्रता आन्दोलन, राजस्थानी ग्रंथागार, सोजती गेट के बहार, जोधपुर-342001, सं. 2008
- तलवार, वीर भारत, झारखंड के आदिवासियों के बीच, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वसंत कुंज, दिल्ली-110070, सं. 2012
- त्रिपाठी, प्रो. मधुसूदन, भारत के आदिवासी, ओमेगा प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली-110002, सं. 2011
- दास, श्यामल, वीर विनोद, राजस्थानी ग्रंथागार, सोजती गेट के बहार, जोधपुर-342001, सं. 2017
- दामोदरन, के., भारतीय चिन्तन परम्परा, पीपुल्स पब्लिशिंग हॉउस, नई दिल्ली-110005, सं. 2004
- नायडू,पी. आर, भारत के आदिवासी, रावत प्रकाशन,जवाहर नगर, जयपुर-302004, सं. 2002
- धर्मपाल, शर्मा (सम्पादक) ,मेवाड़ रियासत एवं जनजातियां, प्रताप शोध प्रतिष्ठान, भूपाल नोबल संस्थान, उदयपुर-313002, सं.2007
- पंकज,अश्विनी कुमार (सं.), उपनिवेशवाद और आदिवासी संघर्ष : हैराल्ड एस.तोपनो, विकल्प प्रकाशन, सोनिया विहार, दिल्ली-110094, सं. 2015
- पंकज, अश्विनी कुमार, मरड.गोमके, जयपाल सिंह मुंडा, विकल्प प्रकाशन, सोनिया विहार ,दिल्ली-110094, सं. 2016
- पाण्डेय, डॉ.मैनेजर, साहित्य के समाज शास्त्र की भूमिका, हरियाणा साहित्य अकादमी, सेक्टर -14, पंचकुला-134113, सं. 2014
- पाटील, अशोक, भील जनजाति और संस्कृति, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, बाणगंगा टी. टी . नगर ,भोपाल- 462003, सं. 2004
- पाठक, डॉ. विनय कुमार, अम्बेडकरवादी सौंदर्यशास्त्र और दलित आदिवासी जनजातीय- विमर्श, नीरज बुक सेंटर, अमन विहार सुल्तानपुरी, दिल्ली-110086, सं. 2006

- पालीवाल, शोभा, अमृतलाल नागर के उपन्यासों मे सामाजिक चेतना, साहित्यगार, जयपुर,चौड़ा रास्ता ,जयपुर-302003, सं.1995
- पालीवाल, सूरज, रचना का साहित्यक आधार, साहित्यगार, चौड़ा रास्ता,जयपुर-302003, सं. 2001
- बोधानन्द, भिक्खु, मूल भारतवासी और आर्य प्रकाशन, पश्चिम पूरी, नई दिल्ली-110063, सं. 2009
- भागानव, महेन्द्र, जनजाति जीवन और संस्कृति, सुभद्रा पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, चंदू नगर दिल्ली-110094, सं. 2003
- माथुर, एल.पी., गोविन्द गिर व उनका आन्दोलन, शब्द महिमा, गलत रोड , जयपुर, सं. 1997
- मिश्र, शिवकुमार, मार्क्सवादी चिन्तन : इतिहास तथा सिद्धांत, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली-110002, सं.2010
- मीणा, केदार प्रसाद, अदिवास प्रतिरोध, अनुजा प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली-110032 सं. 2016
- मीणा, गंगा सहाय, आदिवासी, साहित्य विमर्श, अनामिका प्रकाशन दरियागंज, दिल्ली-110002, सं. 2014
- मीणा, जगदीश चंद, भीलजनजाति का सांस्कृतिक एवं आर्थिक जीवन, हिमांशु प्रकाशन, हिरनी मगरी, सेक्टर-11, उदयपुर-313002, सं. 2003
- मीणा, रमेशचंद, उपन्यासों में आदिवासी भारत, अलख प्रकाशन, अजमेर हाई-वे, जयपुर- 302019, सं. 2004
- मीणा, रमेश चंद, आदिवासी विमर्श, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर-302004, सं. 2013
- मीणा, हरिराम, आदिवासी दुनिया, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, वसंत कुंज, दिल्ली-110070, सं. 2013

- मीणा, हरिराम, मानगढ़ धाम, आदिवासी जलियावाला, अलख प्रकाशन, अजमेर हाई-वे, जयपुर- 302019, सं.2013
- मीणा, हरिराम, जंगल जंगल जलियांवाला, शिल्पायन प्रकाशन, शाहदरा, नई दिल्ली-110032, सं. 2008
- मीणा, पिंटू कुमार, मानगढ़ आन्दोलन कन्द्रित हिंदी साहित्य, अलख प्रकाशन, अजमेर हाई-वे, जयपुर-302019, सं. 2013
- शर्मा, गोपिनाथ, राजस्थान का इतिहास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर- 302004, सं. 2013
- शर्मा, डी.पी. (सम्पादक), मेवाड़ रियासत एवं जनजातियाँ, प्रताप शोध प्रतिष्ठान, भूपाल नोबल संस्थान, उदयपुर- 313002, सं. 2007
- शर्मा, बृजकिशोर, राजस्थान में किसान एवं आदिवासी आन्दोलन, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर- 302004, सं. 2013

पत्र पत्रिकाएँ

- मीणा, गंगा सहाय ; लेख आदिवासी साहित्य : स्वरूप संभवनाएं और चुनौतियां सं. गिरीश्वर मिश्र, अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्विद्यालय, वर्धा,महाराष्ट्र , अंक-42
- मनोज, अमित (सम्पादक): रेतपथ-आदिवासी विशेषांक, कोथल, महेन्द्रगढ़